10वीं फैल

अजय राज सिंह

कॉपीराइट © 2020 अजय राज सिंह

सर्वाधिकार सुरक्षित

इस पुस्तक में चित्रित पात्र और घटनाएँ काल्पनिक हैं। वास्तविक व्यक्तियों, जीवित या मृत के लिए कोई समानता संयोग मात्र है और लेखक द्वारा अभिप्रेत नहीं है।

इस पुस्तक का कोई भी भाग लेखक की लिखित अनुमति के बिना, पुनर्प्राप्ति प्रणाली में पुनरुत्पादित या संग्रहीत नहीं किया जा सकता या इलेक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग, या किसी भी रूप में अन्यथा रूप से संचारित नहीं किया जा सकता है।

2020 पहला संस्करण

ISBN-13: 9781649193650
ISBN-10: 1649193653
ASIN: B08CYC4RCW

कवर संकल्पना: अजय राज सिंह
कवर डिजाईन: नोशन प्रेस

मेरे दोस्तों के लिए, जिनके बिना ये कहानी लिखना, शायद ज्यादा आसान होता।

'चाहने' और 'होने' के बीच की दूरी का दूसरा नाम ही जीवन है।
हर किसी का सफर इसी दूरी में कहीं शुरू होकर खत्म हो जाता है,
पर वो सफर कभी पूरा नहीं होता।

उस अधूरे सफर के मुसाफिर के नाम।

सामग्रियाँ

शीर्षक पेज
कॉपीराइट
डेडिकेशन
सूक्ति
प्रस्तावना
1. बीजगणित
2. समीकरण
3. अनुपात
4. बहुपद
5. गुणनखंड
6. साधारण ब्याज
7. चक्रवृद्धि ब्याज
8. क्षेत्रफल
9. आयतन
10. त्रिकोणमिति
11. ज्यामिति
12. सांख्यिकी
13. प्रायिकता
कहानी के पार... कहानी से परे
लेखक के बारे में

प्रस्तावना

यकीन मानिए, कहानी लिखने से भी ज्यादा कठिन काम उसी कहानी के लिए प्रस्तावना लिखना होता है। वैसे देखा जाए तो 'प्रस्तावना' की प्रकृति अपने आप में ही उलटी है। ये किताब का वो हिस्सा है जो कहानी लिखने के बाद लिखा जाता है, पर लोग कहानी पढ़ने से पहले पढ़ते हैं। प्रस्तावना, तूफान आने के पहले का सन्नाटा जैसा होता है। उस खामोशी सा, जो आगे होने वाली हलचल की नींव रखता है।

किसी भी कहानी की सबसे अच्छी बात ये होती है कि वो बस एक कहानी है। या तो किसी की सिर्फ एक कल्पना, या किसी का कोई बीता हुआ कल। मेरा मानना है कि किसी भी कहानी का सिर्फ 'एक' संस्करण नहीं होता है। हाँ, लिखने वाला एक लिखता जरूर है। पर पढ़ने वाला हर व्यक्ति, अपने हिसाब से अपना खुद का संस्करण बना लेता है। कुछ लेखक के विचार के इर्द-गिर्द, तो कुछ उसकी कल्पनाओं के परे ही कुछ, बेहद अलग। ये कहानी सच है या काल्पनिक, आपको तय करना है। इसका किसी भी व्यक्ति, जीवित अथवा मृत, से कोई संबंध है या नहीं, आपको तय करना है। ये कोशिश सफल है या असफल, आपको तय करना है। क्योंकि आप जो पढ़ेंगे उसे मैंने लिखा जरूर है, पर वो संस्करण, आपका अपना है। मैं तो सिर्फ एक माध्यम हूँ, आपकी कहानी का।

फिर मिलते हैं... कहानी के उस पार।

अजय राज सिंह

1. बीजगणित

जब दुनिया में पहली बार किसी ने किसी का नाम रखा होगा तो क्या रखा होगा? आधे घंटे से सोच रहे हैं, पर कोई जवाब जैसा जवाब नहीं मिल पा रहा है।

मायसेल्फ बबलू, बबलू शुक्ला। यूँ तो सारा शहर हमको इसी नाम से जानता है, पर जो लोग हमको थोड़ा ज्यादा जानते हैं, उनको हमारा दूसरा नाम भी पता है। पिताजी चाहते थे कि हम भास्कर शुक्ला के नाम से प्रख्यात हों। पर हमको हमारे गाँव में कोई भास्कर बोले, हम ऐसा होने नहीं देते। अरे यहाँ तो ऑप्शन भी नहीं देते, बस एक दिन 'काजल' का 'कजलिया' हो जाता है और 'शुभम' का 'शुभमना'। हमको पाँचवीं क्लास में ही समझ आ गया था कि हम अगर भास्कर रहे, तो भास्कर नहीं रहेंगे, और बात बस इतनी सी होती तो शायद हम मान भी जाते, पर नहीं। एक अलग ही डर था हमारे भोले मन को। भास्कर अखंड शुक्ला, इतना लंबा नाम लेते-लेते गाँव के बड़े-बूढ़े स्वर्ग सिधार गए तो? हाँ! नर्क-स्वर्ग, कर्मों के हिसाब से सबका अपना-अपना। कैसे जीते हम अपने सिर हत्या का पाप लेकर? हमने देखा था छगन काका की साँस फूलते हुए, जब वो हमारा नाम लेकर हमको जोर-जोर से डाँट रहे थे। अब दूसरों की चिंता करने का गुण तो हम में बचपन से ही था। तो बस, हमने खुद ही अपना नामकरण कर लिया, दोबारा। पंडित तो हम खुद ही थे, सो ज्यादा दिक्कत भी नहीं आई। बबलू शुक्ला, एकदम सिंपल एंड स्वीट, झकास अलग से। एक वो दिन था जब छगन काका की साँस फूली थी। और एक आज का दिन है, हम कागजों के लिए भास्कर, और दुनिया के लिए बबलू बनकर अट्ठाईसवाँ साल काट रहे हैं।

हमारी पूरी जिंदगी आज तक बस हमारी अम्मा के आस-पास ही गुजरी है। इस दुनिया में उनके सिवा हमारा और कोई भी नहीं है। पिताजी आर्मी में थे। जब हम तीसरी में थे, उनका देहांत हो गया। हमारी अम्मा भगवान से माँगा करती थी कि बॉर्डर पर कोई गोली पिताजी को छू भी न पाए, और इधर पिताजी को चिकनगुनिया ले गुजरा। क्या सिर पीट-पीट कर रोई थी हमारी अम्मा उस दिन। रोना तो हमको भी आ रहा था, पर हम नहीं रोए। अरे हम रो देते तो अम्मा को कौन सँभालता? खैर, अम्मा को हम भी क्या सँभाल पाते, बिस्तर में मूतने की तो उम्र थी हमारी। फिर भी, थोड़ा समय लगा, पर उस हादसे से उबर आए हम।

एक बार मंदिर वाले पंडित जी ने बताया था कि महिला जाति से कभी उम्र नहीं पूछते। हमने पूछा काहे, तो कहते हैं शास्त्रों में लिखा है। और हमारा भोला मन, मान भी गया। वो तो हमको सालों बाद पंडिताइन ने बताया कि शादी के अगले दिन पंडित जी उम्र पूछ बैठे थे पंडिताइन की। फिर जो

चार महीने उनको सोने को खाट नसीब न हुआ, वो अलग कहानी है।

माना कि उम्र पूछना गुनाह है, होता-होगा, पर पहले से ही पता हो तो किसी को बताने में क्या जाता हैं? हमारी अम्मा अब 48 की हो गई है। पर इस उम्र में महिला-मंडल के साथ गप्पे मारने के बजाए, घर में बैठी भजन करती रहती है। अब बताओ! ये भी कोई उम्र है पूजा-पाठ करने की? हम तो समझाते हैं अम्मा को, अरे खूब समझाते हैं, कि जाओ, हँसी-मजाक करो, पीठ-पीछे लोगों की बुराई करो, सीखो कुछ गाँव की औरतों से। पर नहीं। वो और उसके किशन कन्हैया। किसी और की फुर्सत ही कहाँ है उसको? सिवा एक जिद के कि बबलू, तू ब्याह कर ले। अब हम आज तक गिन नहीं पाए कि अम्मा दिन में भजन ज्यादा करती है, या हमको ब्याह के लिए ताने ज्यादा मारती है। और जो भावुक ताने, क्या बात? मतलब इतने दार्शनिक कि एक बार को गुलज़ार भी शर्मा जाए।

एक बार कहती है, "बस करते रह अपने मन मर्जी, माँ का दिल तोड़ना गुनाह जो नहीं है।"

अरे हम तो सन्न रह गए। मतलब तीन बार दिमाग में लाइन दोहराया तब समझ में आया कि ताना था। बस बेस्ट-डायलॉग का पुरस्कार नहीं मिल पाया, बाकी कोई कमी नहीं रहने दी अम्मा ने।

अबकी जो नया साल आया था, हमने कहा, "कल से साल बदल जाएगा अम्मा।"

हम ठहरे पैदाइशी भोले, बच्चे से हो गई गलती, किसी बात पर निकल गया मुँह से। तो अम्मा कहती है, "जहाँ अपने ही बदल जाएँ, साल की किसको परवाह।"

दो मिनट के लिए तो लगा कि ला कहीं लिख लूँ, कुछ नहीं तो किसी मौके पर रसीद देंगे। दोबारा सोचा तो पता लगा अम्मा अब भावनाओं के साथ खेल रही है। अपने बेटे के भावनाओं के व्यवस्थित शोषण का ये उदाहरण, हमारे घर की चार-दीवारी में कैद है। इन अट्ठाईस सालों में ये तो समझ आ गया है कि अम्मा कम जालिम नहीं है। जब देखो, कैसे-ना-कैसे, कहीं-ना-कहीं से, ब्याह की बात ले ही आती है। फिर तो उसके लिए ये जंग हो जाता है- मतलब सब जायज। हम तो कभी-कभी सोचते हैं कि अम्मा को बंबई छोड़ आएँ, दो-चार सिनेमा के डायलॉग तो लिख ही देगी।

वैसे देखा जाए तो अम्मा गलत भी नहीं है। हमारे गाँव में हमारी उम्र का बिन ब्याहा युवक, बेकार की अटकलों को आमंत्रित करने लगता है। कोई इतना नहीं रुकता। हमारा दोस्त डबलू हमारी उम्र का ही है, और उसके दो डबलू हैं। पिछली ठंड प्रकाश भी किसी और का हो लिया। दूसरे शब्दों में कहें तो अब गाँव में हमारी उम्र के अविवाहित हम अकेले ही बचे हैं। वैसे देखने में तो हम गाँव के कन्हैया हैं। ये अलग बात है कि गोपियों को कोई और ले गया। अब ये तो रिवाज ही हो गया है। गाँव की लड़कियों को दूसरे गाँव के सरकारी नौकर ले जाते हैं। फिलहाल तो डॉक्टर और इंजीनियर भी काफी प्रचलन में हैं। गाँव के लड़कों का स्कोप तो बस भगाने में ही नजर आता है। पढ़-लिख कर कुछ बनना तो है नहीं किसी को।

बस किसी खिड़की के भीतर का कोई चाँद गया और चार दिन का रोना किसी दोस्त का हो

जाता है। फिर जो कुमार विश्वास जी के 'कोई दीवाना कहता है' का माहौल बनता है, वो तो कोई पागल ही समझता है। पर हाँ! चार दिन से ज्यादा नहीं। ऐसा है कि चार दिन तक दोस्त समझते हैं, गहरा प्यार रहा होगा। या शायद सच में गहरा प्यार रहा होगा। पर जो चौथे दिन के बाद मुँह से 'मेरी चाहत को दुल्हन तू बना लेना मगर सुन ले' निकला, कनपटी पर दो झनझनाहट भरी चमाट और विरह की सारी पीड़ा खत्म। अब देखा जाए तो ये भी बड़ा धर्म का काम है। दोस्तों में तो होड़ मचती है कि ये पुण्य कौन करेगा? हमारे हत्ते प्रकाश आया था। आज भी कभी रातों में हमको गाली देता है तो हिचकी बराबर आ जाती है। सूजे हुए गाल और लाल-लाल कान का दर्द, कुछ भी कह लो, बाकी सारे गम भुला देता है। हम सब का तो भाई यही मानना है कि दर्द को दर्द ही काटता है।

इस मामले में हमारा जीवन बिलकुल कोरा रहा है। अरे! यहाँ कुछ लोगों के दोनों कान लाल हो चुके हैं, वो भी दो-दो बार। भगवान जाने कैसा प्यार। हमको तो एक बार भी नहीं हुआ।

कम-से-कम ऐसा नहीं कि किसी को ख़ुदा ही मान बैठें।

हमको ये क्या हो गया है, हम अम्मा जैसी क्यों दे रहे हैं? खैर, अब दे ही दिए हैं तो लिख लो कहीं। कुछ नहीं तो किसी महफिल में रसीद देना। क्या फरक पड़ता है?

*** *** ***

"कब ब्याह करेगा रे तू?" जैसे ही उस रात हम घर में घुसे, अम्मा ने अपना वही पुराना ब्रह्मास्त्र दाग दिया।

अब हम क्या कहते? पता तो वैसे अम्मा को भी था। अब कोई पहली बार का सवाल थोड़ी था। तो हमने अपने गिने-चुने जवाबों के पिटारे में से एक लाइन निकाल कर जड़ दिया। "सही समय आने दो अम्मा, हमारा ब्याह भी हो जाएगा और तुमको दादी भी बना देंगे। बस थोड़ा ठंड रखो।"

"अब हम का ठंड रखें," अम्मा ने कहा, "अरे ठंड रख-रख कर कुल्फी हुए जा रहे हैं। हम बोल रहे हैं चलो, देख लो लड़की, बाँध लो किसी को गले, पर नहीं, जाने का चढ़ा रखा है दिमाग में? जाने काहे का डर है तुम्हारे अंदर? अब किसे ढूँढ़ रहे हो बबुआ? अट्ठाईस के हो गए हो। गई तुम्हारी उमर तो। अब तो का पता कोई अपनी लड़की भी देगा तुमको कि नहीं?"

अब क्या बताएँ हम? सच कहें तो हमको ब्याह से कोई डर-वर नहीं लगता है, वो तो बस हम थोड़ा सा नरबसा जाते हैं। नहीं, बात एक ही नहीं है। जब डर लगता है तो पता चलता है कि डर लग रहा है। पर जब कोई नरबसाता है तो पता नहीं चलता, बस कुछ-कुछ हो रहा होता है। व्यक्तिगत रूप में हमको ब्याह से कोई दिक्कत नहीं है। हाँ बस हमको यूँ ही किसी अनजान को हमसफर चुन लेने का तरीका पसंद नहीं आता। ये अलग बात है कि हमारे लिए इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। पर कैसे? कोई कैसे जिंदगी भर का फैसला 10 मिनट में कर ले? अरे 11 मिनट तो आलु उबलने में लग जाते हैं।

"अब का सोच रहे हो?" अम्मा ने हमको अपने होने का एहसास दिलाया।

सच कहें तो जैसे-जैसे दिन-महीने-साल बीत रहे थे, हमको अम्मा की बातों में छुपा शाश्वत सत्य नजर आने लगा था। पर यहाँ बात सिर्फ हमारे मानने या न मानने की नहीं थी।

"देखते हैं," हमने किसी को स-सम्मान मना कर देने वाला राष्ट्रीय शब्द कह दिया और अपने कमरे में जा धंसे।

*** *** ***

ज्यादा पुरानी बात नहीं है, जब हमारे गाँव में बिजली का 'ना होना' एक आम बात, और 'होना' एक चमत्कार था। और यूँ देखा जाए तो अब भी हालात कोई अमरीका नहीं हुए हैं। हाँ, पर सहनीय हो गए हैं। सर्दी के दिन थे और रात का वक्त। अम्मा खाना परोस रही थी। दिये की रोशनी में काफी सुकून से हम भोग लगा रहे थे। सब कुछ सही था। पर अचानक कुछ हमको खटकने लगा। रोटी में घी बराबर लगी थी। सलाद सही से कटे रखे थे। यहाँ तक की नमक भी स्वाद अनुसार ही था। पर कुछ तो था जो हर रोज होता था, पर आज नहीं।

"अम्मा! एक रोटी और," हम बोले।

अम्मा कोने से उठी, रोटी लाकर थाली में रखकर फिर वहीं बैठ गई... चुप-चाप। अबकी जो घटना घटी, बड़ी जोर से खटकी। बस! यही तो था। यही तो कम था। अम्मा के फिजूल के ताने।

तभी तो हम कहें रोटी गले से नीचे काहे नहीं उतर रही है। अम्मा कसम, आज से पहले अम्मा को इतनी देर चुप कभी नहीं देखा।

हम कुछ देर रुके, कि कौन जाने अम्मा की चुप्पी बस हमारे मन का एक वहम हो। फिर दिमाग में ये भी दौड़ा कि वहम हो तो हो, पूछने में क्या जाता है?

"का अम्मा! इतनी सन्न काहे बैठी हो?" हम बोले। सच कहें तो हमको बिलकुल भी नहीं लगा कि हमने कुछ गरम होने जैसा बोला था। खैर, जीवन में लगे हर आग का कारण सिर्फ आपकी गलतियाँ नहीं होती हैं, कुछ आपकी किस्मत भी सुलगा देती है।

"तुम का चाहते हो?" अम्मा के जवाब में एक सवाल आया, "लोरी सुनाएँ तुमको, कि शांति चुभ रही हो तो थाली पीट-पीट कर शोर मचाएँ?"

एक और सच कहें तो यहाँ हमको रुक जाना चाहिए था। अरे भाई, जजमेंट भी कोई चीज होती है। और ये एक कड़वा सच है कि यहाँ पर हमारा, गलत हो गया।

"लगता है हमारी अम्मा सही मूड में नहीं है," हमारे मुँह से निकल गया।

बस...

"हाँ, हमारा तो दिमाग ही खराब है ना। अरे सही कब रहता है? हम ही तो यहाँ पागल बैठे हैं। और जब हम पागल ही हैं तो कौन सुने हमारी बात? कुछ बोलो तो बोलते हैं कि बोलती है। कुछ ना बोलो तो बोलते हैं कि नहीं बोलती। अब खुद ही कह दो कि जिएँ या मर जाएँ? अरे मर भी जाएँ तो

शिकायत करने लगेंगे कि मर गई। उसमें भी कोई सुकून नहीं। बढ़िया है भाई, कर लो बस अपने मन की। जी लो अपनी जिंदगी। हमारा क्या है? आज हैं, कल नहीं।"

"अम्मा! ओ अम्मा, हो गया बस, सुन लिए हम।"

"सुन तो लेते हो, पर समझ नहीं पाते।"

"समझते हैं अम्मा, हम सब समझते हैं। जाने क्यों हम खुद को हर बार पूरी तरह से तैयार नहीं पाते हैं। जब भी तुम ब्याह की बात करती हो तो लगता है कि अभी समय नहीं हुआ है।"

"एक बात हमेशा याद रखना बबुआ," अम्मा स्थिर होकर बोली, "कभी भी किसी भी चीज की तैयारी पूरी नहीं होती। और कुछ चीजें बिना तैयारी के ही किए जाएँ तो बेहतर।"

*** *** ****

'अम्मा की बातों ने उस रात हमको सोने नहीं दिया।' हाँ ये ठीक है। नहीं मतलब, हम मच्छरों के काटने के कारण सो नहीं पाए, ऐसा कहना अच्छा नहीं लगता ना।

पर रात भर करवटें बदल-बदल कर हम अम्मा की बातें जरूर सोचते रहे। क्या सचमुच किसी तैयारी की जरूरत नहीं है? कुछ भी नहीं। बस उठ कर जाओ और किसी से भी ब्याह कर लो। हो भी सकता है, क्या पता? पर लोग तो कहते हैं कि 'धर्मपत्नी' और 'आफत' पर्यायवाची शब्द हैं। कि कभी-कभी साँस लेना भी मुश्किल हो जाता है। एक बार आगे बढ़े तो वापसी का कोई मौका नहीं होता।

पर लोग तो करते हैं। सभी करते हैं। अरे जिसकी नहीं होती, वो तो करने के लिए कुछ भी करते हैं। हो सकता है कि इतना मुश्किल भी न होता हो। क्या पता?

रात भर खेल चलता रहा। कभी बॉल इस गोल में, तो कभी उस गोल में। कभी हम पास कर दें, तो कभी कोई खयाल हमको पास कर दे। कुछ सपने बने, कुछ टूट भी गए। पर रात भर के गहन चिंतन के बाद हमने खुद को आखिरकार मना ही लिया। होना तो है ही, अब ही सही।

"ठीक है अम्मा," हम सुबह-सुबह अम्मा से बोले, "हम तैयार हैं।"

हमको लगा था कि ये सुन कर अम्मा उछल पड़ेगी। खुशी के मारे नाचने लगेगी। आस-पड़ोस के लोगों को बुला कर मिठाई बाँटेगी। पर अम्मा तो बस मुस्कुरा कर आगे बढ़ गई।

जैसे बचपन में हम अम्मा का आँचल पकड़ कर पीछे-पीछे चलते थे, वैसे ही आज भी चल पड़े। हमको लगा अम्मा अब कुछ बोलेगी, पर नहीं। फिर लगा अब कुछ बोलेगी, पर नहीं। पूरे घर का चक्कर लगाने के बाद जब हमको लगा कि अम्मा अब कुछ नहीं बोलेगी, बस तभी अम्मा बोल पड़ी, "रविवार को चलना है, लड़की वालों के यहाँ। बिमला काकी ने बताया है ये रिश्ता। हम तो आज उनको भी मना करने वाले थे। पर अच्छा है, समय रहते तुमको अकल आ गई।"

"इतनी जल्दी," हम लगभग चीखे।

"काहे, अभी तो कहा तुमने कि तैयार हो।"

अब हम भी क्या कहते? ये जो भी हमारे साथ होने वाला था, हमने ही तो चुना था।

"ठीक है, ठीक है। आने दो रविवार, देख लेंगे," हम मुँह बना कर बोले। "वैसे हम तैयार तो नहीं हैं, पर क्या है ना कि कुछ चीजें बिना तैयारी के ही किए जाएँ, तो ही अच्छा है।"

टशन पर अलग से ध्यान दिया जाए।

2. समीकरण

हमारा गाँव भरतपुर, यूँ तो देश के मानचित्र में लगभग गुमनाम ही है। पर यहाँ की एक बात है जो खास है। मतलब खास जैसी खास तो नहीं, पर आम जितनी आम भी नहीं। अट्ठाईस साल पहले हमारे पैदा होने के अलावा और भी बहुत कुछ हुआ था, जो अदभुत भी था और अभूतपूर्व भी। एक दिन बिमला काकी ने अपने बेटे किशन को खूब पीटा। भाई ने काम भी कुछ ऐसा ही किया था। अब अमिताभ जी का कोई कितना भी बड़ा प्रेमी क्यों न हो, सिनेमा देखने के लिए अपनी अम्मा की अंगूठी बेच देना कहाँ की होशियारी है? ये कांड किया तो किया, उस रोज अपनी अम्मा की लात खाकर किशन भइया का दिल इतना आहत हुआ, कि बस हाथ में बचे उसी अंगूठी के पैसे थे, और सुबह की अगली बस। फिर अगले पाँच साल तक न भइया वापस आए, और ना उनकी कोई खबर। रवानगी के बाद गाँव वालों को जब भइया का पहला दर्शन मिला तो पता चला भइया बंबई में थे। मन तो अमिताभ जी से मिलने का बना कर गए थे, पर औकात भी तो कोई चीज होती है? कुछ इधर-उधर के काम-काज किए, फिर धीरे-धीरे खुद भी अदाकारी में लग गए। छोटे-मोटे काम मिलते रहे, भइया का गाँव आना-जाना लगा रहा, और आज देखो कहाँ पहुँच गए। अमिताभ जी के साथ अब उठना बैठना है।

भइया हीरो भले न बने हों, पर जो अदाकारी वो करते हैं, किसी और के बस की नहीं है। कोई और भले नहीं लेता, पर गाँव से बाहर गाँव का परिचय किशन भइया के नाम के बिना नहीं होता है।

महाभारत में ये था हनुमान का जिक्र, बस थोड़ा सा। बाकी अर्जुन कथा बहुत लंबी है।

पढ़ाई-लिखाई में हमारा मन कभी नहीं लगा। मास्टर साहब से तो इतना मार खाए हैं कि शरीर के कुछ हिस्से आज भी लाल हैं। जब दसवीं में दूसरी बार फेल हुए, मास्टर साहब ने भी हाथ जोड़ लिए। माफी माँगने लगे।

"मुझे माफ कर दो बबलू कि मैंने तुमको अपने स्कूल में एडमीशन दिया।" कसम से उन्होंने ये हाथ जोड़ कर कहा था।

लोगों पर तरस खाने की आदत तो हम में बचपन से थी, सो हमने भी कह दिया, "जाइए गुरुजी, माफ किया आपको।"

बस फिर क्या था, दो डंडे और पड़े, और टी.सी. हाथ में। तब से लोग हमको ‘दसवीं फेल’ कहते हैं,

और हम खुद को ‘नौवीं पास’।

यूँ देखा जाए तो हमारा पूरा-का-पूरा बालकांड निरस ही रहा है। हमारी जीवनी पर फिल्म न बन पाने का कुछ श्रेय तो इस बात को भी जाता है। विचार उच्च हों-न-हों, जीवन सादा ही रहा है हमारा। किसी से शिकायत नहीं कर रहे हैं, कोशिश बस इतनी है कि आगे की कहानी के लिए प्रस्तावना बन जाए। दरअसल बात हम आशिकी की करना चाहते हैं।

अब बात करें भी तो क्या? अगर हम 'जीवन' हैं तो ये समझ लीजिए कि हमारी आशिकी 'चुल्लू भर पानी'। कभी-कभी तो डूब के मर जाने का मन करता है। 'छठवीं में एक बार साथ में बैठे थे'। जी हाँ, बस इस एक लाइन में हमारे जीवन का सारा इश्क शुरू भी हो गया, और संभवतया खत्म भी।

भगवान जाने हमने कौनसा पाप कर दिया था। हमको पता था, जन-गण-मन के समय मास्टर साहब जो तिरछी-तिरछी नजरों से के.जी. 2 वाली मैडम को निहारते थे। मास्टर साहब अपने में मस्त, और हम उनमें। सब अपने-अपने काम में व्यस्त हैं, और एक हम हैं जिसको दूसरे की लुटिया में कुल्ला करने का अलग शौक चढ़ा रहता है। अब शौक है-तो-है, क्या करें? हमको मास्टर साहब को ‘निहारते हुए’ निहारते-निहारते उतने दिन हो गए थे, जितने के.जी. 2 वाली मैडम को स्कूल में आए। पर जब भी हम अपने दिल पर हाथ रखते, एक अलग ही आवाज आती थी- मास्टर साहब से कुछ ना हो पाएगा। और आवाज ऐसी कि यकीन करने का दिल कर जाए। हमारे इस विश्वास के दो तर्कसंगत कारण थे। एक तो मास्टर साहब का चेहरा, जो भगवान ने प्रेम के लिए बनाया ही नहीं, और दूसरा ये कि मास्टर साहब की नजर सच में तिरछी ही थी। क्या पता ये सब हमारे मन का बस एक वहम हो?

"तो क्या करें? मास्टर साहब से ही जा के पूछ लेते हैं," प्रकाश ने सुझाव दिया।

हम समझ सकते हैं, इस खयाल को लाने के लिए भाई को अपनी सोच के किस चरम पर जाना पड़ा होगा। पर गलती उसकी नहीं है। एक तो उम्र कम, उस पर भी बुद्धि हल्की-हल्की मंद। भाई और कुछ सोचता भी तो क्या?

"घर से आखरी विदाई ले के निकले हो का बे," डबलू तपाक से बोला, "जब लाठी-चार्ज होगा ना, कोई पानी भी नहीं पूछेगा। मास्टर साहब मारेंगे अलग, और फाड़ेंगे अलग।"

गीता के ज्ञान से कम नहीं थीं डबलू की ये बातें। प्रकाश की गति से भी तेज, सीधे दिल पर उतरी थीं। और इसका असर भी कुछ देर तक रहा, बराबर रहा। हम तीनों चुप भी रहे, तब तक, जब तक प्रकाश को अगला तूफानी खयाल नहीं आ गया।

"हाँ तो मैडम को जा के सब बता देते हैं।"

"भगत सिंह की कहानी पढ़ के आ रहे हो?" डबलू उत्तेजित हो उठा। अब हमारी और डबलू, दोनों की नजर प्रकाश पर ही थी।

"नहीं तो।"

"तो शहीद होने का शौक काहे चढ़ा है? और हम दोनों तुमको राजगुरु और सुखदेव दिख रहे

हैं?" डबलू बड़बड़ाने लगा। "और देश की बात हो तो साला सोचें भी।"

मसला इतना बड़ा नहीं था कि जान दे देते, पर इतना छोटा भी नहीं कि जाने देते। कुछ तो करना था। और इसी सोच में रात बीत गई।

जब अगले दिन की बैठक हुई तो हमने ऐलान कर दिया, "मास्टर साहब के नाम से मैडम को प्रेम पत्र लिखा जाएगा। तालियाँ..."

तो बस ये थी वो गलती, जहाँ से हमारी एक लाइन की आशिकी शुरू भी हुई, और खत्म भी हो गई। दरअसल सब ठीक था। हमने खत लिखा, बराबर मैडम तक पहुँचाया भी। स्कूल में हाहाकार भी मच गया। ये भी पता चल गया कि दोष मास्टर साहब का नहीं, उनकी तिरछी नजर का था। पर कहानी जाकर कहीं और उलझ गई।

सब शुरू होकर खत्म ही हो रहा था कि मास्टर साहब ने क्लास में आकर कहा, "जो भी बताएगा कि वो प्रेम पत्र किसने लिखा, उसे इनाम के तौर पर मैं इस साल बिना इम्तेहान दिए ही पास कर दूँगा।"

हमको तो लगा था कि मास्टर साहब व्योमकेश-व्योमकेश खेलेंगे। यहाँ तो दाँव ही उलटा हो गया। पूरे स्कूल में बात ऐसे फैल रही थी, मानो कोई चुनावी मुद्दा हो।

'बिजली चाहिए कि नहीं चाहिए?'

'चाहिए।'

'पानी चाहिए कि नहीं चाहिए?'

'चाहिए।'

'खत लिखने वाला चाहिए कि नहीं चाहिए?'

'चाहिए।'

माहौल इतना भयावह हो गया था कि हम खुद भावनाओं में बहने लगे थे। मुद्दा बहुत संगीन था, और इनाम जबरदस्त। इतना, कि डबलू पांडे का ईमान डोल गया। बस फिर, हम आ गए मास्टर साहब के घेरे में।

दोष डबलू का भी नहीं है। अरे एक पल को तो लगा कि हम खुद ही अपनी शिकायत कर दें। बिना परीक्षा दिए पास हो जाना तो बस सपने में ही देखा था। खैर, बाद में डबलू को छठवीं में दो बार फेल होते हुए भी देखा गया। वो इनाम आखिर में निकला चुनावी मुद्दा ही, कभी पूरा नहीं हुआ। रही बात बबलू शुक्ला की, तो हमारी सजा अलग ही थी।

दिन भर के लिए मास्टर साहब ने हमारी जगह बदल दी थी। हमको एक लड़की के बगल में बैठा दिया गया। राधिका, यही नाम था उसका। तब का जो जमाना होता था, हम भूतों से ज्यादा लड़कियों के सामने आने से डरते थे। मंदिर वाले पंडित जी ने हमसे एक दिन पहले ही कहा था कि हमारा शनि भारी चल रहा है। पर इतना भारी होगा अंदाजा नहीं था। हम मास्टर साहब के

सामने गिड़गिड़ाते रहे कि भले मार-मार के कोई अंग लाल कर दें तो कर दें, पर ये सजा न दें। पर उस निर्दयी के अंदर काहे की करुणा और काहे का रहम?

मास्टर साहब की सजा ने हमको लाल तो कर दिया था, पर शर्म से।

सरकारी स्कूल में पढ़े लोग लोहे की बेंच के कोने का दर्द समझते होंगे। सारा दिन हम बेंच के आखरी छोर पर, नजर जमीन में गड़ाए, अपनी सजा काटते रहे। राधिका यूँ तो ठीक हमारे बगल में ही थी, पर लग रहा था कि जैसे कोसों दूर हो कहीं। हम भी जाने किस लिहाज के आगे मजबूर थे? जितना भी मुमकिन हो पा रहा था, हम उससे उतनी दूरी बना कर पूरा दिन बैठे रहे। अब बैठे क्या रहे, मानो लटक रहे हों, कि बस एक बार कोई तबियत से छू दे तो हम जमीन पर पसर जाएँ।

समय बीत रहा था, और जब भी क्लास की लड़कियाँ खिखिया कर हँसे, हमारी नजर और नीचे गड़ जाए। हमको तो कभी-कभी लगता था कि पूरे शुक्ला खानदान पर हँस रही हैं। हम बीच-बीच में प्रकाश की ओर भी देख लेते। और फिर जिस हीन भावना से वो हमको वापस देखता, हमारे बालक मन में मास्टर साहब के लिए नफरत और बढ़ जाती।

हमारे अदभुत और अविस्मरणीय जीवन काल का ये वही दिन था, जब हमको समझ आ गया था कि हमारी किस्मत वाली जो रेखा है, उसके अब्बा नहीं मानेंगे। ज्यादा उम्र नहीं थी हमारी, भोला ही था हमारा मन, पर ये जान गया था कि हमारे किस्मत के रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं।

उस दिन फिर जब छुट्टी की घंटी बजी, हम बस्ता उठाकर ऐसे भागे जैसे किसी गलत जगह आग लग गई हो। और बेंच के कोने ने जो हमारा हाल किया था, बस मान लो कि लगी ही थी। हम दिन में हुए हादसे से दुखी कम थे, और उससे अंततः उबर आने पर खुश ज्यादा। हमारे जीवन का ये पहला प्रेम प्रसंग था। और संभवतया आखरी भी। इसे हम प्रेम प्रसंग इसलिए कहते हैं कि कभी-कभी जब हम में हमारी अम्मा जागती है, तो ऐसे क्रांतिकारी खयाल भी दिमाग में आते हैं-

वो जो मैं शर्मा के तुम्हारे पास आया,

और तुम खिलखिला कर हँस पड़ी।

वो जो मैं खामोश रहा,

और तुम बिन कुछ कहे सबकुछ कह गई,

वो भी मेरी जिंदगी की एक कहानी है।

जानकारी के लिए बता दें, कि आजकल राधिका के बच्चे हमको मामा-मामा कह कर पुकारते हैं। जी हाँ! और उस दिन को याद कर प्रकाश और डबलू हमको आज भी चिढ़ाते हैं। और कमबख्त हम चिढ़ भी जाते हैं। खैर छोड़ो, अब क्या फरक पड़ता है?

वैसे जितने नाकारे हम बचपन में हुआ करते थे, अब उतने नहीं हैं।

हाथ में टी.सी. लिए जिस दिन हम घर पहुँचे, अम्मा ने हमसे सारी उम्मीद ही छोड़ दी। दसवीं में दूसरी बार फेल हुए थे। अंदाजा तो था कि अम्मा स्वागत जरूर करेगी। सवाल ये था कि झाड़ू से या

डंडे से। रिजल्ट छुपा भी नहीं सकते थे। प्रकाश सुबह-सबेरे ही अम्मा के सामने नारियल फोड़ आया था कि रिजल्ट आज ही खुलेगा। अब तो घंटी हाथ में थी, और बिल्ली सामने। कमबख्त बाँधना भी हमको ही था। पर कैसे?

"अम्मा हमारी जंच रही है आज," हमने घर में घुसते ही पहला दाँव खेल दिया।

"तू फिर फेल हो गया ना," अम्मा ने गुस्से में कहा।

अब जो हम सड़क भर सोच कर आए थे कि कैसे बात को घुमा देंगे, वो तो कहीं सड़क पर ही छूट गया। कुछ रह गया था तो हमारा चाँद सा चेहरा, और हाथ में बड़ा सा दाग। हमको अंदाजा हो गया था कि हमने गलत दाँव खेल दिया है।

"तुम्हारा दाँव गलत नहीं है," अम्मा ने आगे दे मारा, "ऐसा है कि हम तुम्हारी अम्मा हैं। तुम्हारे कुछ सोचने से पहले हम सोच लेते हैं कि तुम का सोचोगे।"

यूँ तो उस समय अम्मा रोटी सेंक रही थी, पर जाने क्यों जल हम रहे थे। अम्मा के फिर वही दार्शनिक विचार और वही ताने। इतनी देर तक अम्मा चूल्हा छोड़कर नहीं उठी, तो अब उठने वाली नहीं है। कम-से-कम इतना सुकून मिला कि आज अम्मा गरबा के मूड में नहीं है। लाठी और झाड़ू का प्रोग्राम तो कैंसिल। हाँ, ताने जरूर पड़ेंगे। पर ठीक है, सह लेंगे थोड़ा-थोड़ा।

"इसलिए तो तुम अम्मा हो हमारी," हम मानने वाले थोड़ी थे, हमने फिर दे दिया एक। अब हम पास की खाट पर विराजमान थे।

"हाँ, अम्मा हैं इसलिए अभी तक पैरों पर खड़े हो, अभी तुम्हारे बापू होते तो बना के उधेड़ते तुमको।"

'फिर तो अच्छा है कि नहीं हैं', हमने मन में ही सोचा।

"अरे निर्लज्ज, बापू थे वो तुम्हारे, कुछ तो शर्म कर," अम्मा बड़बड़ाई। अम्मा फिर समझ गई थी कि हम क्या सोच रहे हैं। "तुम्हारी जिंदगी में हमको तो बस गाय-भैंस का तबेला ही नजर आ रहा है अब। पढ़ाई-लिखाई से तो संन्यास ही ले लो तुम।"

हमको यहाँ एक मौका दिखा कि लगे हाथों अम्मा को स्कूल से निकाल दिए जाने वाली दूसरी खबर भी सुना दें। और हमने उसे जाने नहीं दिया।

"वैसे हम भी यही सोच रहे थे अम्मा," हम धीरे से बोले, "कि अब कुछ काम-धाम करें, आखिर रखा ही क्या है पढ़ाई-लिखाई में। कुछ होना-जाना तो वैसे भी नहीं है।"

"तुमको स्कूल से निकाल दिए का?" अम्मा ने तपाक से पूछा।

"अरे यार! हमको नहीं खेलना है," हम भिनभिनाए, "तुम पहले ही सब जान जाती हो।"

अम्मा के चेहरे पर एक कुटिल मुस्कान आ गई, "ऐसे ही अम्मा थोड़ी कहते हो हमको। मतलब आज आखरी उम्मीद भी खत्म। लगता है हमारी सारी उमर तुम्हारे बापू के पेंशन पर ही कटेगी। कटने दो। कुछ चीजें होती हैं जो हम चाहते हैं कि हमारे हिसाब से चलें, पर अक्सर उन्ही पर

हमारा बस नहीं होता।"

हमको लगा कि हो गया। पर ऐसे भी भला होता है कभी? अभी तो अम्मा का रेडियो-मोड बाकी था। दरअसल हर दो-चार दिन में एक बार अम्मा इस मोड में आ ही जाती हैं। अरे बहुत आसान है, सच में। किसी बात को लेकर बस बोलते रहो। और कुछ भी। कोई सुने, न सुने, कोई मतलब निकले, न निकले, बस बोलना है। और बोलना भी क्या, बड़बड़ाना है।

"पढ़ाई तो गई। हमको तो बचपन से ही लक्षण दिख गए थे तुम्हारे। और कह रहा है काम-धाम कर ले। अरे कौनसा काम करेगा? घर के काम बोल दो तो मौत आ जाती है। बिमला का लड़का तुमसे तीन साल छोटा है और अब कॉलेज जाएगा। शहर में कमरा भी देख आया है। तीन दिन से कह रहे हैं कि गेंहू पिसवा दो, पिसवा दो, पर क्यों? अरे क्यों पिसवाएँ, राजा साहब गेंहू पिसवाने के लिए थोड़ी पैदा हुए हैं। लगा तो रखी है एक दासी, सब काम करती है तो ये भी करे। और एक तो हमारी आँख... सूरज कमबख्त चाँद जैसा दिखने लगा है।..."

और रेडियो चलता रहा।

*** *** ***

बहुत सी चीजों में हमारा मन नहीं लगता है, ये तो हम भी मानते हैं, पर एक बार जिसमें लग गया, तो फिर बवाल समझ लो। हमारा बचपन का एक सपना था कि स्कूल में एक दिन आग लग जाए। और आग लगे-सो-लगे, हम फिल्मी हीरो जैसे सारे बच्चों को बचा अलग लें। आखरी में कहीं मास्टर साहब पड़े हों, लपटों के बीच, गिड़गिड़ाते हुए, "मुझे बचा लो बबलू, भगवान के लिए बचा लो।"

"निर्दयी मास्टर," हमारे सिर के पीछे से एक अदभुत रोशनी निकल रही हो और आगे हम गुरूर में कहें, "इन आग की लपटों में आज स्कूल नहीं जल रहा है, यहाँ तुम्हारा अहंकार जल रहा है, यहाँ जल रहे हैं तुम्हारे सितम, जो तुमने मासूम बच्चों पर किए हैं। तुम समझते हो कि तुम इस अग्नि से निकाल लिए जाने के लायक हो... कभी नहीं। देखो इन मासूम बच्चों के चेहरों को, ये इस भीषण आग से बच जाने पर खुश नहीं हैं। इनकी खुशी का कारण तो खुद ये आग है, और तुम्हारा ये हाल। इन भोले-भाले बच्चों को प्रताड़ित करने का जो पाप तुमने किया है, ये सब उसका ही नतीजा है।"

और उस दिन इतना ही सपना देखा था कि हमको अम्मा की चीख सुनाई दी। अब नींद जो है, सपने के साथ उड़न-छू हो गई। हम भागे अम्मा के पास।

वहाँ पहुँचे तो देखा कि आग सच में लगी थी, पर हमारी अम्मा के कमरे में। हम जैसे-तैसे अम्मा को कमरे से बाहर लेकर आए और गाँव वालों को बुलाया। आग पर काबू पाते-पाते अम्मा का पूरा कमरा, और हमारा आधा घर, समझ लो खाक हो गया।

गाँव वालों में मास्टर साहब भी थे।

"भगवान का शुक्र है," मास्टर साहब ने पास आकर कहा, "कि तुम दोनों ठीक हो। सब ठीक हो

जाएगा।"

यहाँ हमको तो कुछ और ही दिखाई दे रहा था, जैसे मास्टर साहब के सिर के पीछे से वही अदभुत रोशनी निकल रही हो, "देखा बबलू, ये सब तुम्हारी ही उद्दंडता का नतीजा है। मैंने तुमको हमेशा से सिखाया कि कभी किसी का बुरा मत सोचो। पर तुमने मेरी बात कभी नहीं मानी। ये आग अपनी किस्मत में तुमने खुद ही लिखा है।"

शायद सही भी था, पूरा नहीं तो आधा ही सही। हमने 'आग' को अपनी किस्मत में लिखा हो-न-हो, आग से अपनी किस्मत जरूर लिख दी। हमने अपनी अम्मा के साथ मिलकर अपना घर दोबारा बनाया। समय लगा, पर समय के साथ हमको इसी में अपनी किस्मत दिखने लगी। नौ साल पहले हमने अपना पहला घर बनाया था, अपने लिए, और अब, दूसरों का बनाते हैं। बिल्डर बबलू शुक्ला कहते हैं लोग हमको।

3. अनुपात

बिल्डर बबलू शुक्ला कहते हैं लोग हमको। पूरे गाँव में रोब ऐसा कि तबाही समझ लो। नहीं, चाचा विधायक नहीं हैं हमारे। पर विधायक के साथ उठना-बैठना जरूर है। शहर में विधायक जी के कितने ही मकान हैं, वो सब किसने बनवाए? अरे हमने! बस अगला स्कैम और होने दो, एक मकान का ऑर्डर और आ जाएगा। बस ऐसे ही ऑर्डर आता है और हम तान देते हैं चार मंजिल। ऐसा है कि काम हमारा है धाँसू, तो नाम बस चल पड़ा। चटक सफेद कुर्ता, काला चश्मा और गड़गड़ाती हुई बुलेट। भरी दुपहरी जो हम निकल पड़ें तो सूरज भी शर्मा जाए।
अरे सूरज अपना! बप्पन चाचा का लड़का।

और ऐसे ही हर कोई हमारे नाम का लोहा नहीं मानता है, यहाँ हर बच्चे की तोतली जुबान पर बस यही रहता है, "बले होकल हम बबलू भइया जैसे बनेंगे।"

हमाले काम में... एक मिनट! एक मिनट! फिर से शुरू करते हैं।

हमारे काम में सफल होने का बस एक ही मंत्र है, जुगाड़। और ये जुगाड़ ही है जो हम तब से करते आ रहे हैं जब पहला काम मिला था। तब दो महीने ही हुए थे अग्नि कांड के बाद अपने घर की मरम्मत किए हुए। मास्टर साहब ने स्कूल से तलाक वैसे भी दिलवा दिया था। इतना खालीपन था कि हवा चलने की आवाज भी कानों में अलग से आती थी। हमने तो चरवाहों के साथ उठना-बैठना भी शुरू कर दिया था। क्या पता अम्मा की तबेले वाली बात सच हो जाती?

उस रोज हम नदी किनारे बैठे पानी में पत्थर उछाल रहे थे कि पीछे दूर से ही डबलू ने आवाज दी, "जान देने का सोच रहे हो क्या?"

हम पीछे मुड़े। अब डबलू हमारे बगल में ही खड़ा था।

"हमारी कौन सी लुगाई भाग गई बे कि हम जान दे-दें," हमने कहा, "और तुम यहाँ काहे भटक रहे हो, स्कूल का टाइम है ये तो, मास्टर साहब को पता लगा तो तुमको यहीं डुबा-डुबा के मारेंगे।"

डबलू के चेहरे पर भाव तो ऐसे आए कि जैसे उसे फरक ही न पड़ा हो। पर जो भय की बंसी उसके मन में बज रही थी, उसका पता हमको भी था और उसको भी। वो हमारे बगल में आकर बैठ गया।

"अबे पागल हो क्या?" डबलू बोला। "मास्टर साहब से कौन डरता है?"

अक्सर लोग असल जीवन की समस्याओं को भूलकर, क्षणिक सुख में खुद को विलीन कर लेते हैं। डबलू का कहना कि उसके मन में कोई डर नहीं है, और तो और, खुद को ये बात मना भी लेना, अगर इसका व्यवस्थित उदाहरण नहीं है तो हम नहीं जानते क्या है?

"हओ, निपोर लो तुम सब टशन यहाँ पर, जब जूते पड़ें और पैंट गीली हो जाए तब ये मत कह देना कि पानी है।"

"तुम जाओ बे," डबलू बोला, "हम यहाँ तुम्हारे लिए खबर लेकर आए हैं और तुम हमारी ही उधेड़ रहे हो।"

"क्या हो गया, अम्मा बुला रही है क्या?" हमने पूछा।

"फिर वही, छोटी सोच," डबलू बड़बड़ाया, "अबे कभी तो अम्मा, मास्टर साहब और फालतू की बकैती से ऊपर उठो। कुछ नहीं तो हमारी ही लाज रख लिया करो। कल पिताजी से सुने हम, गाँव में कोई शहरी बाबू आए थे। सरकार ने गाँव में शौचालय बनवाने की मंजूरी दी है।"

"अबे तो अभी से काहे उछल रहे हो," हमने तपाक से अपनी राय रखनी चाही, "जब बन जाए तब बता देना, फीता काटने आ जाएँगे।"

"फिर वही, हरामखोर तुम सुधरोगे नहीं। पहले पूरी बात तो सुनो," डबलू भड़क कर बोला। अबकी जो मूड में डबलू आया था, हम समझ गए थे कि लड़का कुछ तो तिरछा सोच रहा है।

हमने कहा, "बको।"

"कलुआ के घर के सामने जो जमीन है ना।"

"छगन काका वाली," हम फिर टपक पड़े, आदतन।

"हाँ वही," डबलू आगे बढ़ा, "उसे सरकार ने सार्वजनिक शौचालय के लिए चुन लिया है। इसके अलावा हर घर में अलग।"

"और छगन काका?"

"छगन काका को मुआवजा मिल जाएगा। उसका लोड तुम मत लो। कल वो शहरी बाबू जो आए थे ना, शौचालय का निर्माण उनके ही जिम्मे है। हमारे बापू ठहरे सरपंच, तो उन्होंने बापू से कहा है कोई ठेकेदार ढूँढ़ने को। अगले महीने से काम चालू हो जाएगा।"

अब डबलू चुप था। वो हमारे कुछ बोलने का इंतजार कर रहा था। हम भी चुप थे। हम भी डबलू के आगे बोलने का इंतजार कर रहे थे। डबलू ने हमको देखा, हमने डबलू को देखा, दोनों चुप... एक लंबी खामोशी। पूरे दो मिनट की देखा-देखी के बाद जब मसले में कुछ मसला जैसा दिखा ही नहीं, तो हम वापस नदी में पत्थर मारने लगे।

"क्या मजा आता है तुमको इतनी गाली खाने में? अबे तुमको कुछ सुनाई नहीं दे रहा कि समझ

में नहीं आ रहा?" डबलू खिसिया के बोला।

"क्या समझें," हम बोले, "नहीं! मतलब दिक्कत क्या है? न जमीन अपनी, न मुआवजा अपना और न शौचालय अपना। ढोल कोई कहीं और पीट रहा है, ससुरा बज तुम रहे हो।"

"गाँजा मार के बैठे हो क्या बे?" डबलू गुस्से में बोला, "कि घुटने में सदमा लग गया है? हम बोल रहे हैं कि गाँव में ठेकेदारी का नया काम आया है, दूर-दूर तक बापू के पास कोई ठेकेदार नहीं है, तुमने दो महीने पहले अपना घर खुद ही बनवाया है, अरे हमको तो समझ नहीं आ रहा है कि दिक्कत कहाँ आ रही है? इतनी सी बात काहे नहीं घुस रही तुम्हारे दिमाग में?"

अब जो माहौल तन गया था, मुंडा तो हमारा भी भन्नाने लगा था। "तुम चाहते हो तुम्हारे बापू के लिए ठेकेदार हम ढूँढ़े?" हमने भोले मन से पूछा।

"अबे यार!" डबलू को उसके सपने बिखरते हुए दिखने लगे। "अब न हम और सह सकेंगे, और ना तुमसे कुछ हो पाएगा। तुम यहाँ बैठे-बैठे बस पत्थर उछालो, फिर यहीं डूब के मर जाना। फोटो पर माला डालने आ जाएँगे," डबलू बिफर गया और उठकर जाने लगा।

मामले की अहमियत अब झलकने लगी थी। पर कोई अहम बात, वो भी अपना डबलू कहे। क्या बात है? मतलब ये तो सरासर चमत्कार था। इम्तेहान का ये सवाल तो कमबख्त किताब के बाहर का निकला। डबलू! अरे वो डबलू जो बारात में दुल्हन की बहनों के साथ जूते चुराता था, कोई जरूरी बात कह रहा है। ऐसे कैसे बे?

"अच्छा-अच्छा, रुको तो," अब हम सुनने के मूड में आ गए थे, "अब एक एहसान कर दो हम पर, कि जो भी चक्रव्यूह तुम्हारे दिमाग में है, उसे सीधे-सीधे परोस दो।"

डबलू जाने वाला तो वैसे भी नहीं था। अब रुकने जैसा दिखा।

"हम बोल रहे हैं कि दोनों भाई ठेकेदारी का धंधा शुरू करते हैं। पहला काम भी लगा हुआ है, बस पकड़ने की देर है। एक बार ये शौचालय बना दें, फिर तो माँ कसम सब सुलभ-ही-सुलभ। हमारे अकेले के नाम पर तो बापू आग उगल देंगे। साथ में बात करेंगे तो शायद बात बन जाए। तुम्हारा घर देख कर बापू तुम्हारी तारीफ वैसे भी करते हैं। कहो तो आज ही आजमा लें," डबलू एक साँस में सब बोल गया।

"क्या बक रहे हो बे, तुमको बैठे-बैठे हवा चढ़ गई क्या?" हमने कहा।

"दिक्कत क्या है?"

"तुम्हारे बापू।"

"अरे वो तो साठ साल से हैं, पर अब हैं-तो-हैं। पर सोच बबलू, अगर बापू मान गए, हम दोनों गाँव के पहले ठेकेदार बनेंगे।"

अब बात हमको आहिस्ता-आहिस्ता जंचने लगी थी।

अब तक हमारे पूरे गाँव के ठेके, पास के गाँव के ठेकेदार ले जाते थे। अगर वो नहीं, तो बड़े कामों

के लिए कोई शहर से आ जाता था। धंधे में दम तो था। और कोई कुछ भी कह ले, गाय-भैंस चराने से तो अच्छा ही था।

डबलू के साथ सब विचार-विमर्श करने के बाद, हमने हामी भर दी।

"चलें फिर बापू के पास?"

"चलो! और वहाँ मुँह मत खोलना तुम," हमने कहा, "चुप्पे-चाप सुनते जाना बस। जब इशारा करें, हाँ में सिर हिला देना।"

"चलो फिर जल्दी।"

हम उठ खड़े हुए। एक दूसरे के कंधे पर हाथ डाल, दोनों भाई मस्ती से चल पड़े।

"पर यार डबलू, 'ठेकेदार' कुछ जंच नहीं रहा है।"

"अरे तो भाई अंग्रेजी में कुछ देख लेंगे।"

"यार हमने कहीं 'बिल्डर' सुना था।"

"बस फिर हो गया, बिल्डर बबलू शुक्ला और बिल्डर डबलू पांडे।"

*** *** ***

ये धंधा जितना हमारा और डबलू का है, उतना ही प्रकाश का भी है। इसकी शुरुआत भले ही हम दो लोगों ने की थी, पर जब तक प्रकाश साथ नहीं आया था, हम सुलभ शौचालय ही बनाया करते थे। प्रकाश शहर से पढ़ कर आया था। भाई ने पढ़ाई तो बहुत की, आधा इंजीनियर है, वो भी सिविल, पर इतना नहीं कर पाया कि कहीं नौकरी लग जाए। तब हमारा भी काम धीरे-धीरे बढ़ रहा था, तो एक दिन नशे में हमने कह दिया कि कल से आ जाओ, तीनों भाई साथ काम करेंगे। हमको खुद नहीं पता कि हमने दिल से कहा था या मजाक में। पर वो तो सच में आ गया।

"तो भइया आप करते क्या हो?" प्रकाश ने अगले दिन घर पर आते ही पूछा। 'घर' इसलिए क्योंकि पाँच साल पहले ठेकेदारी का सम्पूर्ण संचालन हम घर से ही करते थे। समयावधि के घेरे में कहीं कोई छूट न जाए इसलिए दोबारा कह रहे हैं, 'पाँच साल पहले'।

प्रकाश का सवाल काफी कठिन था। इतना तो कभी हमने सोचा ही नहीं था कि हम आखिर करते क्या हैं? बिल्डर हैं भाई, बिल्डिंग ही बनाते हैं। हमारा मुँह बिचकता देख उसने दोबारा घुमा के दिया, "हमारा मतलब है कि 'हमको' करना क्या होगा?"

हम जानते थे कि सवाल बदल गया है, पर प्रकाश को हमारा धंधा कमजोर न लगे, इसलिए हमने पहले सवाल का ही जवाब देना उचित समझा, "दो-चार हफ्ते रह लो हमारे पास, सब समझ जाओगे हम क्या करते हैं और क्यों करते हैं?"

वैसे याद तो हमको अब भी नहीं है कि हमने ये किस फिल्म का डायलॉग चिपकाया था। पर जिस टशन के साथ हमने कहा, कसम से हमारी अम्मा वहाँ होती तो नजर उतार लेती।

"देखते हैं," कह कर प्रकाश पास पड़ी खाट पर पसर गया।

"अबे तुम तो लंबे हो लिए?"

"तो आप ही ने तो कहा अभी दो-चार हफ्ते हैं हमारे पास।"

"अरे तो ये थोड़ी कहा कि जब तक कुछ न समझो कोई काम ही नहीं है।"

"तो यही तो हम पूछ रहे थे आपसे कि हमको करना क्या होगा?" प्रकाश ताने भरे लहजे में बोला, "और आप हैं कि टशन झोंक रहे हैं। दो-चार हफ्ते रह लो हमारे साथ और पता नहीं क्या-क्या?"

उस वक्त जिस सलीके से हमारा हमारे ही धंधे में स्वागत किया गया था, अभी हमारी अम्मा होती तो हमको अपना बेटा मानने से इनकार कर देती। और जो नजर उतारा था, वो वापस अलग ले लेती।

*** *** ***

"अरे बबलू भइया," प्रकाश एक दिन हमारा और डबलू का अच्छा मिजाज परख कर बोला, "हम बोल रहे थे कि अब कुछ बड़ा करते हैं। मतलब अब ये गाँव-गाँव जा-जाकर ये छोटे-मोटे मकान बहुत बना लिए। क्या कहते हो?"

"तुम साफ-साफ बोलो बे, ज्यादा पंचायती न निपोरो," डबलू बोला।

"अब देखो, चार साल हो गए आपको ये धंधा करते हुए। हो गए या नहीं? और सच में कुछ करने के नाम पर क्या किया?"

"बेटा जो तुम बोल रहे हो," डबलू ने प्रकाश को घूर कर कहा, "अगर वही बोलना चाहते हो तो बहुत पिटोगे। मार-मार के यहीं बिछा देंगे।"

"अरे भइया ऐसे गर्माओगे तो कैसे चलेगा, पहले पूरी बात तो सुनो," प्रकाश ने बात सँभालने की कोशिश की। "हम सोच रहे थे कि सरकारी टेंडर भर देते हैं। काम मिल गया तो कसम से गर्दा उड़ा देंगे।"

अभी-अभी जो शब्द प्रकाश ने कहा था, 'ट' से 'र' तक, पूरा-का-पूरा नया था। "टेंडर क्या होता है?" हमने पूछा।

"जब भी कोई सरकारी काम आता है तो विभाग वाले अखबार में टेंडर निकालते हैं। जिसका भी वो काम अपने जिम्मे लेने का मन हो, बस फॉर्म में भर के दे-दे कि कितने में कर देगा। जो सबसे सस्ते में निपटा देने का दावा करता है, उसको काम मिल जाता है।"

"भोलापन जाएगा नहीं तुम्हारा," डबलू तरस भरे लहजे में बोला, "अबे तो हम अकेले थोड़ी होंगे फॉर्म भरने वाले? अखबार में आएगा तो सब को दिखेगा, सब भरेंगे। क्या भरोसा काम हमको मिलेगा की नहीं।"

"अरे फॉर्म भरेंगे तब तो कुछ होगा। यहाँ बैठे-बैठे तो और कुछ नहीं होगा। जितना अपने हाथ में है

उतना तो करें। और अभी शहर से बियारी गाँव तक पक्की सड़क बनाने का टेंडर निकला है। बड़ा काम है। यहाँ से ज्यादा दूर भी नहीं है। हमने तो शहर से फॉर्म भी मंगवा लिया है। कहो तो भर दें।"

"सुनो बे," डबलू बोला, "अगर काम बड़ा होगा तो बड़े-बड़े लोग भी बैठे होंगे ताक में। और सरकारी काम है, सिर्फ सस्ता टेंडर भर देने से नहीं मिलेगा। सिफारिश भी लगेगी। और वो भी अच्छी-खासी। बेटा! दफ्तरों के चक्कर काटते रह जाओगे।"

"हम पता किए हैं दफ्तर, पी.डब्लू.डी. में कोई पटेल बाबू हैं, सब उन्ही के हाथ में है। बस उनको सेट कर लो, वो ऊपर तक बाकी सब सेट कर देंगे," प्रकाश बोला। भाई हम दोनों को मना लेने की पूरी तैयारी कर के बैठा था। "हमारे कॉलेज का एक दोस्त वहीं काम करता है। समय देख के मिलवा देगा। बस फिर सब अपने हाथ में होगा। हो पाए तो पटा लो, वर्ना जाने दो।"

"बात में दम तो है," हम बोले, "तुम क्या बोलते हो डबलू?"

"भर दो फिर," डबलू बोला, "जब पटेल बाबू से मिलने जाना हो तो बता देना। हमसे बात होगी तो मान जाएँगे।"

"और अगर नहीं माने तो?" प्रकाश अब थोड़ा उछलने सा लगा था।

"तो मना लेंगे," डबलू मुस्कुरा कर बोला।

हम तो हैरान थे, कैसे हमारे डबलू भइया ने 'टेंडर क्या होता है' से लेकर 'तो मना लेंगे' तक का सफर बस पाँच मिनट में ही तय कर लिया था। बिलकुल शताब्दी की तरह। हम मानते हैं, डबलू उन लोगों में से है जो आम तोड़ने के लिए उछलता नहीं, डाल झुका देता है। पर इतना कॉन्फिडेंस?

एक हद के ऊपर का आत्मविश्वास अक्सर नाकामी में तब्दील हो जाता है। इस बात का यूँ तो कहानी से कोई लेना-देना नहीं है। बस जहन में आ गया, तो सोचे कह देना चाहिए।

सबकी ‘हाँ’ हो गई, लागत निकाल ली गई, और टेंडर भर दिया गया। अब कुछ बाकी था, तो इंतजार। नतीजे का नहीं, पटेल बाबू से मुलाकात का। शुरुआत में तो हमको लगा था कि कुछ बड़ा करने के लिए प्रकाश अकेला ही उत्साहित है। पर यहाँ तो डबलू अलग नहीं मान रहा था। भाई हफ्ते भर के अंदर पटेल बाबू की पूरी जीवनी निकाल लाया था। मतलब इतिहास से लेकर भूगोल तक। कुछ फिजिक्स, केमिस्ट्री होता हो तो वो भी।

"सोमवार को शहर चलना है," प्रकाश ने आखिरकार एक दिन कह ही दिया। "शाहिद का फोन आया था। बोल रहा था इस टेंडर के लिए दफ्तर में बहुत ज्यादा ही आना-जाना हो रहा है। साहब को अपनी टीम में लेना आसान नहीं होगा।"

"आसान काम में मजा भी तो नहीं," डबलू बोला।

डबलू की बात गलत नहीं थी। किसी की भी नहीं होती। बस परिस्थिति गलत होती है। विस्तार से कभी और चर्चा करेंगे। उदाहरण के साथ।

*** *** ***

मुहूर्त निकल चुका था, और दिन आ गया था। अब वक्त था कुछ कर दिखाने का।

तो बस फिर, जो होना था वो हुआ। तीनों भाई नहा-धो कर तैयार हो गए। बराबर सिर पर नारियल का तेल लगा कर, करीने से माँग निकालकर सब लगभग सेट ही था।

"शादी वाली शेरवानी पहन लें क्या?" प्रकाश ने पूछा।

"तुमको चलना है कि नहीं?" डबलू थोड़ा ऐंठ कर बोला।

"अरे आज तो हमारे बिना वैसे भी कुछ नहीं होगा, हमको तो जाना ही होगा," प्रकाश मुँह बना कर बोला। अब पटेल बाबू से मिलने का जुगाड़ भी तो उसने ही लगवाया था, तो इतना गुरूर जायज था।

इन सब दौड़-भाग, बातचीत और समय पर पहुँचने की जद्दोजहद के बीच एक खुशी की बात ये रही कि प्रकाश को उसकी शेरवानी नहीं मिली।

यूँ तो हम तीनों ही समयशीलता के नाम पर कलंक हैं, पर उस रोज पी.डब्लू.डी. के दफ्तर पहुँचने में जरा सी भी देर नहीं हुई। हम बिलकुल समय पर आ गए। अपनी बात करें तो हमारे अंदर कोई भावना ही नहीं थी। पूरे फकीर मन से पहुँचे थे हम। न टेंडर पा लेने की कोई उम्मीद, और ना खो देने का कोई गम। पर हमारे भाइयों के मन शांत नहीं थे। दोनों विचलित थे। प्रकाश का मन उछल रहा था, और डबलू का उछलते-उछलते रह जा रहा था। जैसे ही हम सब दफ्तर पहुँचे, बाहर ही प्रकाश का कॉलेज वाला दोस्त मिल गया, वही जिसने सब सेट करवाया था।

"शाहिद भाई," प्रकाश दूर से ही चीख पड़ा। बराबर गले-वले लग कर हमारा परिचय करवाया, "ये हैं डबलू भइया और ये हैं बबलू भइया।" सारा नमस्ते-प्रणाम हुआ। "और तुम बताओ क्या हाल-चाल हैं?"

"अब भाईजान हाल-चाल तो चलता रहेगा, अभी पटेल बाबू से मिल लो। ज्यादा समय नहीं है अपने पास।"

"अरे हाँ हाँ, जरूर," प्रकाश बोला और सब तेजी से दफ्तर की ओर बढ़ने लगे।

हम तीनों अंदर जा ही रहे थे कि शाहिद भाई ने पीछे से फिर आवाज दी।

वो पास आकर बोले, "बेटा अंदर जाने से पहले तीन बातों का खयाल रखना।" यहाँ पर यूँ लगा कि अब जो शाहिद भाई बोल रहे हैं, बात बस वही जरूरी है। वो आगे बोले, "पहला ये कि जो आदमी अंदर बैठा है, बहुत कमीना है।

दूसरा ये कि जो आदमी अंदर बैठा है, बहुत 'बड़ा' कमीना है।

और तीसरा..."

"और तीसरा," प्रकाश लपक कर बोला, "कि वो आदमी बहुते ज्यादा कमीना है।"

"गलत जवाब! तीसरा ये, कि तुम बहुत भोले हो।"

हम और डबलू हँस पड़े। वो क्या है कि आदत नहीं है ना, प्रकाश की किसी और को उड़ाते देखने का।

"हाँ! मजाक अलग और काम अलग," अब शाहिद भाई का लहजा थोड़ा संजीदा हो गया था, "पटेल बाबू से थोड़ा सँभल कर ही चलना। यूँ तो मेरे बॉस हैं, पर उनके सामने मैं खुद हद में रहता हूँ। तुम तो ये समझ लो कि निष्ठा छोड़कर उनमें सारी खूबी कुत्ते वाली ही है।"

"वैसे कोई चिंता की बात नहीं है," डबलू सँभल कर बोला, "कोई कितना भी बड़ा वाला क्यों न हो, हमसे बड़ा वाला थोड़ी होगा। आदत है हमको। हमारा तो रास्ता भी कुत्ता काटता है, बिल्ली नहीं।"

इस मजाक के बाद सब खिलखिला उठे। तनाव कम तो नहीं हुआ, पर सहनीय हो गया। हाँ! मजाक ही था।

"वापस आकर मिलते हैं," हमने कहा और तीनों अंदर चले गए।

*** *** ***

तड़प-तड़प कर एक पंखा हम तीनों के ऊपर चलने की कोशिश कर रहा था। चाय के चार खाली कप पास ही पड़े थे। टेबल पर फाइलें रखी हुई थीं। जो हिस्सा खाली था, धूल से भरा हुआ था। कमरा लोहे की हरी-हरी अलमारियों से भरा पड़ा था। हवा चलती, तो खिड़कियों के पर्दे उड़ते। कमरे के एक कोने पर बीच-बीच में धूप भी आ रही थी। हम तीनों लाइन से बैठे थे। एक-दूसरे से न एक इंच आगे, और न दो इंच पीछे। दोनों हाथ सिर के पीछे कर, अंगड़ाई लेते, मुँह में पान दबाए, हमारे सामने विराजमान थे साक्षात, श्री चमन पटेल।

"तो आप हैं?" पटेल बाबू ने शुरुआत की।

"सर मायसेल्फ बिल्डर बबलू शुक्ला," हमने बात आगे बढ़ाई। "ये हैं डबलू पांडे, और..."

"हम प्रकाश," बगल वाली कुर्सी से टप्प से आवाज आई। भाई से रुका ही नहीं गया।

"समझे नहीं आप," पटेल बाबू बोले, "अरे नाम में क्या रखा है? यूँ तो हमारा भी नाम चमन है। पर क्या फरक पड़ता है? काम बताओ तो कुछ काम की बात हो।"

"शाहिद ने आपसे हमारी बात करी होगी," हम बोले, "दरअसल जो शहर से बियारी गाँव तक पक्की सड़क बनाने का टेंडर निकला है, हमने भी उसका फॉर्म भरा है।"

"अब देखिए," पटेल बाबू बड़े हल्के लहजे में बोले, "फॉर्म तो दुनिया ने भरा है। अब क्या बताएँ आप लोगों को? किसी से कुछ छुपा तो है नहीं। आजकल सिर्फ 'भरा' से कुछ नहीं होता, कुछ होने के लिए 'हरा' होना जरूरी है।"

अब इसके बाद पटेल बाबू जो मुस्कुराए, माशा-अल्लाह पूनम के चाँद की याद आ गई। महाशय के

सिर पर बाल तो वैसे भी नहीं थे। नाम 'चमन' अलग से।

"अरे सर, कैसी बात कर दी," हम वापस बोले, "ये भी कोई बोलने की बात है। अरे एक बार हमको टेंडर तो मिलने दीजिए, बाकी रंग आप भूल जाएँगे। मतलब उठने से बैठने तक, खाने से पीने तक, जागने से सोने तक, आपको सब हरा-ही-हरा दिखेगा। भरोसा रखिए हम पर।"

"अजी अब जमाना ऐसा आ गया है कि किसी पर भरोसा ही तो नहीं होता।"

"लोग कहते हैं कि उम्मीद पर दुनिया टिकी है, थोड़ा भरोसा हम पर कीजिए और पूरी उम्मीद के साथ टेंडर हमको टिका दीजिए। यकीन मानिए, जितना हम टिका सकते हैं, कोई और नहीं टिका पाएगा।"

यूँ तो हम अम्मा से सीखी सारी होशियारी बाकायदे दिए जा रहे थे। पर जाने क्यों पटेल बाबू पर कुछ असर होता हुआ दिख नहीं रहा था।

पटेल बाबू मुँह बना कर बोले, "देखिए बबलू जी, यहाँ बड़ी-बड़ी हाँकने से कुछ नहीं होगा। मुझे बताया शाहिद ने आपके बारे में। आप लोगों ने किया ही क्या है अब तक? शौचालय बनाने के अलावा और कोई सरकारी काम तो देखा भी नहीं आपने। अरे घर बनाने और सड़क बनाने में अंतर होता है। सीमेंट अलग है, और डामर अलग। और पढ़े कितना हैं आप लोग? एक दसवीं पास, एक दसवीं फेल..."

"नौवीं पास," हम बीच में बोले।

"हाँ वही, नौवीं पास!" पटेल बाबू तंज कसते हुए बोले, "और तीसरा इंजीनियर, वो भी आधा। पूरे इंजीनियर को तो कोई पूछ नहीं रहा है, बात करते हैं।"

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि अगर उनको गाली दे दो, तो गाली की बेइज्जती हो जाती है। हमने अभी-अभी अपने मन में, गालियों की घनघोर बेइज्जती की थी।

"मना कर दिया का भइया?" प्रकाश हमारी ओर देखकर धीरे से बोला।

प्रकाश को अनसुना करते हुए हम आगे बोले, "अब यूँ तो हमारे जितना पढ़ा-लिखा आदमी मकान बनाने के भी लायक नहीं है, पर हमने बनाया ना? और बनाया क्या, बहुत अच्छा बनाया। अरे पचास-पचास कोस दूर तक नाम चलता है हमारा। और हर कोई बस यही बोल कर नया काम नहीं देगा कि तुमसे ना हो पाएगा, तो फिर हम कर के दिखाएँगे कैसे?"

जितना कह सकते थे, हमने सब कहा। जितना सुन सकते थे, हमने सब सुना। तुम तो कह लो कि हमने अपना कलेजा ही निकाल कर रख दिया था बाहर। पर 'भैंस' के लिए 'बीन' क्या?

"बबलू जी," पटेल बाबू बोले, "ऐसा है कि फालतू की बकैती में आपका भी समय जा रहा है, और मेरा भी। दरअसल बात ये है कि जो आप मुझे दे सकते हैं, उससे कहीं ज्यादा देने का वादा कोई और कर के जा चुका है। सच कहें तो मुझे फरक नहीं पड़ता कि आप कुछ बना पाएँगे या नहीं। अरे मुझे क्या करना है, सड़क बने, नहीं बने," प्रकाश की ओर देखकर पटेल बाबू ने सिर हिलाया, "क्यों भाई?"

"बिलकुल-बिलकुल," प्रकाश बोला।

"अब मुझे नहीं लगता," पटेल बाबू आगे बोले, "कि आप लोगों के पास कुछ भी ऐसा है, कि कहानी बदल जाए। स्क्रिप्ट तो मैं लिख चुका हूँ।"

"आप सब का हो गया हो तो हम भी कुछ बोल दें," डबलू पहली बार कुछ बोला।

"अच्छा आप भी बोलते हैं क्या?" पटेल बाबू ने व्यंग्य कसने की कोशिश की, "वैसे नाम क्या बताया था आपने?"

"अरे नाम में क्या रखा है? यूँ तो हमारा नाम डबलू है... डबलू पांडे। पर क्या फरक पड़ता है? हम काम बताएँ तो कुछ काम की बात हो। क्यों?"

डबलू को ऐसे अचानक सुनकर पटेल बाबू सकते में आ गए।

डबलू आगे बोला, "ऐसा है कि फालतू की बकैती में आपका भी समय जा रहा है, और हमारा भी। दरअसल बात ये है कि जो कोई भी आप को बहुत कुछ देने का वादा कर के जा चुका है, वो वो नहीं दे सकता जो हम दे सकते हैं। सुना है रजत पटेल सन ऑफ श्री चमन पटेल आज कल बंबई में फिल्मकारों के चक्कर काट रहे हैं। अब वो भी क्या करे बेचारा, बचपन का सपना जो है कि किसी फिल्म में हीरो बन जाए। हीरो तो दूर, कोई छोटा-मोटा रोल भी नहीं मिल रहा है। सच कहें तो हमको फरक नहीं पड़ता कि वो कुछ बन पाए या नहीं। अरे हमको क्या करना है, वो हीरो बने, नहीं बने," प्रकाश की ओर देखकर डबलू ने सिर हिलाया, "क्यों भाई?"

"बिलकुल-बिलकुल," प्रकाश फिर से बोला।

"अब हमको नहीं लगता," डबलू आगे बोला, "कि किशन सिंह की अगली फिल्म में आपके बेटे के लिए एक रोल की बात करना सही होगा। क्या मतलब कहानी बदल कर? स्क्रिप्ट तो वैसे भी लिखी जा ही चुकी होगी।"

हम डबलू का खेल समझ गए थे, फिर हमने भी बराबर साथ दिया, "अब हमको नहीं लगता कि यहाँ रुकने का कोई मतलब है। फैसला तो हो ही गया है। तो पटेल बाबू, बहुत अच्छा लगा आपसे मिल कर, अब इजाजत दीजिए।"

इतना कह कर हम और डबलू उठ कर जाने लगे। हम दोनों को देख प्रकाश भी साथ हो लिया।

"एक मिनट! एक मिनट," हम पलटे ही थे कि पीछे से पटेल बाबू की आवाज आई। जनाब कुछ और कहते थे तो चुभती थी। पर इस बार जो उन्होंने कहा, किशोर कुमार... कि लता मंगेश्कर, कहाँ हम भी लगे हैं?

ये वही आवाज थी जिसने हमारी सादी रोटी जैसी जिंदगी को बटर-नान बना दिया। और बस इसी आवाज के साथ सोमवार का वो दिन शनिवार में बदल गया। फिर एक मिनट कब एक घंटा हो गया पता ही नहीं चला। किशन भइया का अट्ठाईस साल पहले गाँव से भागना ऐसे काम आएगा, कौन कह सकता था?

सही से आँखें मींज कर देखो तो आज आधी दुनिया सफल है। सब अपने-अपने मायने में। और जो बाकी आधे बचे हैं, वो हैं जिनको कभी मौका ही नहीं मिला। यहाँ हर कोई टैलेंटेड है भइया। दिक्कत बस ये है कि कौन बताए झटकना कब है, और लपकना कब? बहरहाल अगर इन ज्ञान की बातों में से सार निकालने की कोशिश की जाए तो बस इतना ही है कि हमने अपना पहला मौका लपक लिया था। शहर से बियारी तक की सड़क, हमारा पहला बड़ा सरकारी काम हमको मिल गया था। फिर जो हम लोगों ने काम किया, एकदम चौंचक।

गाँव के बेरोजगारों को काम मिल गया और बियारी गाँव को एक पक्की सड़क भी। बेटे के भविष्य में धुँधली रोशनी देख कर पटेल बाबू भी खासे खुश रहने लगे। और हमारे गाँव को मिल गए उनके पहले असली वाले बिल्डर। तो इस तरह से सफल हुआ, सबका साथ और सबका विकास। कहीं लिखा तो नहीं है, पर सड़क निर्माण के बाद इन पाँच सालों में इतना व्यवहार तो बना लिया है कि पटेल बाबू के दफ्तर से निकलने वाले सारे काम जब तक हम न मना कर दें, हम ही करते हैं।

किसी रेल गाड़ी की तरह, हमारी जिंदगी स्टेशन से निकल चुकी थी। अरे निकलती कैसे नहीं, हरी झंडी हम तीनों ने मिलकर जो दिखाई थी। अब तो कसम से रफ्तार भी जोरदार पकड़ रखी थी। सबकुछ काफी सुखद था, पर तब तक, जब तक हमारी अम्मा ने एक दिन बेरहमी से, चेन न खींच दी। जैसे किसी घने जंगल के बीच हमारी जिंदगी की रेल, चार झटके दे कर रुक गई हो।

उस चेन का नाम था, "ब्याह?"

4. बहुपद

हमने देखा है इंसानों को बड़ी-बड़ी बातें करते हुए। और यही कारण है कि हम किसी पर आसानी से भरोसा नहीं करते। अब कहने को तो डॉन भइया भी कहते थे कि उनको पकड़ना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है। पर क्या हुआ? दूसरों का तो ठीक है, कभी-कभी हम खुद पर ही संदेह करने लगते हैं।
हमने अम्मा को 'हओ' कह तो दिया था, फिर भी चाहते थे कि कहीं से दूसरी राय ले ली जाए।

"हम लड़की देखने जा रहे हैं," हमने प्रकाश और डबलू को बताना उचित समझा, "तुम दोनों को भी साथ चलना पड़ेगा।"

"ऐसे कैसे बे?" डबलू अचानक फूट पड़ा, "मतलब तुमको भी ब्याह करना था क्या? ये क्या कह रहे हो? जब समय था तब याद नहीं आया कि मौसम ही अभी बना है?"

"हमको तो लगता है कि मौसम ही अभी बना है," प्रकाश बोला।

"वैसे तुम दोनों में काबिलियत तो नहीं है, फिर भी हमको लगा कि कुछ सलाह दे पाओगे," हमने विचलित मन से पूछा, "हम सही तो कर रहे हैं ना?"

"अब भइया बात ऐसी है," प्रकाश आगे होकर बोला, "कि आप गलत नहीं कर रहे हो।"

"अब ई का बात हुआ बे?"

"सही तो कह रहा है," डबलू बोला, "वैसे भी जिंदगी में रोज कुछ नया होना चाहिए। अब सब कब बदल जाएगा, तुमको पता भी नहीं चलेगा। सब कुछ एकदम नया।"

"क्या मतलब, सब नया हो जाएगा?"

"अब भइया बात ऐसी है, कि अब कुछ पुराना नहीं रह जाएगा।"

"अम्मा कसम अब तुम दोबारा ये बोले ना तो उलटा लटका के मारेंगे।"

"सही तो कह रहा है," डबलू बोला।

वैसे वो आगे और भी कुछ बोलना चाहता था, पर नहीं बोला। हमारे घूरने के बाद दोनों लगभग

चुप हो गए थे। 'लगभग' इसलिए कि अगर उनके मुँह में कोई टेप भी लगा दे, तो कमबख्त आँखों से मजाक उड़ा देते हैं।

कभी-कभी तो लगता है कि दोनों को खूब मारें।

भिगा के।

डंडे से।

लोहे के।

जब सो कर उठे हों, तब।

और वो भी अचानक।

पर क्या करें, दोस्ती के आगे मजबूर हैं।

*** *** ***

रविवार की सुबह सब नहा-धो कर तैयार थे। हम, अम्मा, प्रकाश और डबलू। हाँ, बस इतने ही। सच कहें तो हमारे बस इतने ही शुभचिंतक हैं। बस इतने ही लोग हैं जिनके लिए आज का प्रसंग 'संभावित विवाह' की ओर अग्रसर था। बाकी लोगों के लिए अगर कुछ था तो बस एक 'मुमकिन दावत'। हुआ तो ठीक, नहीं तो कट तो वैसे भी रही है, जिंदगी आगे भी कट जाएगी।

हमारी अम्मा ने भी क्या खूब कहा है, 'जमाने को क्या कि हमको हो गया है कुछ, हमको भी क्या जो कुछ जमाने को हो जाए।'

हम नहीं जानते हमारी किस्मत में क्या लिखा है। पर इस बात का यकीन है कि जो भी लिखा है, अच्छा नहीं है। अब प्रकाश और डबलू को ही देख लो।

हिचकोले खाती, एक गाँव की पथरीली सड़क से चलकर, हमारी गाड़ी अब दूसरे गाँव की पथरीली सड़क पर आ गई थी। सच कहें तो सफर इतना भी लंबा नहीं था जितना हमको सफर करते वक्त लग रहा था। जाने सब क्या सोच रहे थे? बिलकुल खामोश बैठे थे। न अम्मा कुछ बोले, न बबलू और न प्रकाश। हमारा खामोश रहना समझ में आता है। लड़का नरबसा रहा होगा। उसकी जिंदगी का सवाल है। कुछ हद तक मौत का भी। पर बाकी सब को क्या हो गया था?

कभी-कभी जिस पल के आने का शोर सबसे ज्यादा होना चाहिए, वो आकर बस चला जाता है, और कोई आवाज भी नहीं होता।

कुमार सानू के गाने, डगमगाती गाड़ी, खामोश हमसफर और हम। बस इसी माहौल में सफर कटना था, सो कट गया। और वक्त आने पर हमारी गाड़ी धड़ाक से आ रुकी 'शर्मा निवास' के ठीक सामने।

"काकी... जीजू आ गए," शर्मा निवास की छत से कान झनझना देने वाली आवाज आई। जाहिर

तौर पर किसी कन्या की थी। लोग इतनी जोर से युद्ध का आगाज भी नहीं करते, और यहाँ अलग ही उत्साह पसरा पड़ा था।

"जीजू... कौन है बे?" गाड़ी से उतरते-उतरते डबलू हल्का-हल्का बड़बड़ाया।

हम सबने जमीन पर कदम रखा ही था कि पूरी शर्मा फैमिली हमारे स्वागत में आ गई।

हमने मुस्कुराने की कोशिश की, पर सफल होने से पहले ही हमारी अम्मा से मिलती-जुलती एक महिला हमारी आरती उतारने लगी। अरे! प्रोग्राम पूरा लग रहा था। बराबर चन्दन-अक्षत के टीके लगने लगे भाई।

"हम बारात लाना तो नहीं भूल गए," प्रकाश धीरे से कान में खुसफुसाया।

बात उसकी भी सही थी। ऐसा स्वागत कौन करता है भाई?

"देख लेना भइया, कहीं मंडप-वंडप तो नहीं लगा रखा है," डबलू घी डालने लगा।

ये जो हमारे साथ हो रहा था, कहीं तो देखा-देखा सा लग रहा था। हाँ, बिलकुल वैसा ही जैसा फिल्मों में होता है। जरूरत से ज्यादा साफ-सुथरा वातावरण। अगल-बगल की छत से झाँकते पड़ोसी। और इन सबके बीच घबराए-घबराए से आप खुद।

आपके ठीक सामने की पहली दो लाइन में खड़ी होती है घर की महिला-मंडल। मतलब माँ से लेकर दादी से लेकर चाची से लेकर बुआ से लेकर मौसी, हर वो शख्स जिसने दो दिन पहले ट्रेन का तत्काल टिकट सफलता पूर्वक हासिल कर लिया होता है। उनके ठीक पीछे रहती है एक लाइन पुरुषों की। इस लाइन की समझ अपने आप में अगम्य होती है। इसमें खड़े लोग आपके लिए मुस्कुरा जरूर रहे होते हैं, पर सच कहें तो किसी को कुछ फरक नहीं पड़ता। ये वो लोग होते हैं जो कभी आरती की थाल के इस पार खड़े थे। जो चाहते तो हैं कि कह दें, 'भाग जा!' 'सब छलावा है', 'पागल मत बन भाई', और जाने क्या-क्या? पर फिर ये सोच कर रुक जाते हैं, 'कि साला कब उठे कौन?'

और माहौल की सनसनी, देश के भविष्य तो इर्द-गिर्द सीटी बजाते हुए भाग-दौड़ कर रहे थे। बच्चे! इतने! एक साथ!

'हम भारतीय इतने कब हो गए?' पिछली जनगणना के बाद सीधे तब ये खयाल आया था।

इस गहमा-गहमी के दौरान, जब-जब फुस-फुसाते पुरुषों के बीच औरतों की खिखियाने की आवाज आती, हमको एक अलग ही दर्द दे जाती। जैसे हँस-हँस कर कह रही हों, 'ये आए हैं? हो पाएगा इनसे?'

जैसे-तैसे घर के बाहर का माहौल ढीला हुआ। राजशाही आवभगत के बीच हम सब भीतर दाखिल हो गए। चटक लाल रंग के पर्दे जगह-जगह व्यवस्थित रूप से लहरा रहे थे। कालीन ऐसी साफ-सुथरी कि धूल को शर्म आ जाए। समझ में आ रहा था कि पिछली दिवाली के बाद, आज सुबह-सुबह ही उसे बक्से से निकाला गया है। अभी तो टेबल के बीचों-बीच रखे गुलदस्ते का स्टीकर भी नहीं निकला था, और उसे बेरहमी से सजा दिया गया था।

"बबलू को तो आप जानते ही हैं," हमारी अम्मा बोली, "ये है प्रकाश, और ये डबलू।"

इशारे के साथ-साथ, चेहरे पर बराबर मुस्कान लाकर भाइयों ने सबकी नजरों का सामना किया।

"तीनों साथ ही काम करते हैं," अम्मा आगे बोली, "ठेकेदारी... आपको तो पता ही है।"

"जी! जी! जी! जी!"

"बाकी घर काफी अच्छा सजा रखा है आपने।"

"जी हाँ, सब पिंकी का ही किया हुआ है," पिंकी जी की अम्मा बोलीं। देर से आने वालों को हम बता दें कि यहाँ पर पिंकी जी हमारी प्रस्तावित वधू हैं। इन मोहतर्मा को ही देखने के लिए हम इतनी दूर से आए हैं। हालाँकि हमने पहले फोटो देखा था, पर क्या है कि आजकल जमाना खराब हो गया है। भरोसा नहीं होता किसी पर। अब यूँ देखा जाए तो लोग इंजीनियरिंग की डिग्री भी दिखाते हैं। पर सच में सब इंजीनियर होते हैं क्या?

"हमारी पिंकी कभी खाली ही नहीं बैठती। जब देखो कुछ-न-कुछ करते ही रहती है। कभी सिलाई लेकर बैठ जाती है, तो कभी पेंटिंग। और खाना बनाने का शौक तो पूछिए ही मत। घर के कामों में बड़ा मन लगता है उसका।"

'तारीफें सुन कर बहक मत जाना,' डबलू हमारे कान में धीरे से बोला, 'ऐसे ही किसी जगह हमको भी बोला गया था कि तुम्हारी भौजाई के हाथ में जादू है। पर देख लो हमको, हर रात घर जल्दी जाना पड़ता है, रोटी सेंकने के लिए।'

सच कहें तो हमको समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। मतलब मुस्कुराएँ, शर्माएँ, कुछ कहें, या चुप रहें। एक तो कमरे में इतने सारे लोग, और हर कोई साला हमको ही देखे जा रहा था। काहे भाई, तुम सबकी तो हो गई ना? मिल गया ना जो चाहिए था? अब हमारे पीछे काहे पड़े हो? हम आ गए हैं, जिसको ब्याह करना है उसको देख लेने दो। पसंद आए तो ठीक, नहीं आए तो कट लेंगे। हमको बार-बार देख कर तुम काहे मुस्किया रहे हो?

हमको लग रहा था कि हमको छोड़कर आज बाकी सबका दिन है। आलम ये था कि हमको सामने रखे समोसे भी दुविधा में डाल रहे थे। लाल चटनी सही रहेगी या हरी?

खूब बकैती हुई। बिलकुल फिजूल। मतलब बिना सिर पैर के। राजनीति से लेकर रणनीति तक। अमरीका वाली चाची से लेकर खरगोन वाले फूफा तक। और मौसम का जिक्र तो ऐसे चल रहा था जैसे बस अभी ही बारिश चाहिए। इतनी उत्सुकता तो 'लगान' में 'भुवन' को भी नहीं थी। अब किसी को क्या कि किसी और को फरक पड़ता भी है या नहीं। बोलना है बस। कुछ भी।

पूरे पैंतालीस मिनट की खी-खी, खी-खी के बाद एक अधेड़ उम्र की महिला, बगल की सीढ़ियों से उतर आईं। हम तय करने ही वाले थे कि ये पिंकी जी की मौसी हैं या बुआ, पर आते ही जो खुसर-फुसर उन्होंने हमारी प्रस्तावित सास के कानों में किया, हमारा ध्यान भटक गया।

'कहीं तो देखा है ऐसा,' प्रकाश हमको कोहनी मार कर आहिस्ते से बोला।

ऐसे माहौल में किसी का किसी के कान में कुछ कहना संदेह पैदा करता है। बिलकुल। और ये बहुत आम बात है, हमने सोचा, सो हम ज्यादा चिंतित नहीं हुए। पर माहौल में हल्की गहमा-गहमी जरूर आ गई थी।

तापमान दो डिग्री और बढ़ाने के लिए प्रकाश हल्के स्वर में हमसे फिर बोला, 'हमको पक्का पता है यहाँ क्या हो रहा है। लड़की के पड़ोसी का दूर का मामा आपकी कोई करतूत लेकर सामने आ गया है। पक्का! हम कह रहे हैं, हमारे साथ ये हो चुका है।'

'खुद मरना पसंद करोगे कि हम मार दें?' डबलू प्रकाश के कंधे पर हाथ फेरकर, धीरे से बोला।

'नहीं नहीं, ठीक हैं हम।'

"दरअसल," लड़की की अम्मा थोड़ा अटक कर बोली। एक अलग ही संकोच झलक रहा था उनकी बातों में, "पिंकी यहाँ आने में थोड़ा घबरा रही है। क्यों न बबलू जी ऊपर जाकर ही पिंकी से मिल लें।"

तीन गुड-लेंथ बॉल के बाद ये अचानक बाउंसर कहाँ से आ गया?

हमने प्रकाश को देखा। प्रकाश ने डबलू को देखा। डबलू ने अम्मा को देखा।

"अरे क्यों नहीं," अम्मा बोल पड़ी। "अब जैसा बच्चों को ठीक लगे।"

हमको लगा था कि अंपायर नो-बॉल दे देगा। पर नहीं।

'सीढ़ी चढ़कर, आगे से लेफ्ट', हम मन में रास्ता रटते हुए आगे बढ़ रहे थे। आज तक ऐसी किसी परिस्थिति में हम डबलू को आगे कर दिया करते थे। सच कहें तो आज हम भाई को लाए ही इसलिए थे। क्या पता कब काम आ जाए? पर अब जो रास्ता हमारे सामने था, हमको अकेले ही तय करना था। नहीं, हमको डर नहीं लग रहा था, हम बस थोड़ा नरबसा रहे थे।

कमरे का दरवाजा आधा लगा हुआ था। बाकी आधे को उसी चटक लाल पर्दे ने घेर रखा था, जो जगह-जगह नीचे हॉल में लहरा रहा था। हमको थोड़ा-थोड़ा समझ में आ रहा था कि लाल रंग देख कर साँड बौखला क्यों जाते हैं।

एक गहरी साँस लेकर हमने दरवाजा खटखटाया, "जी... क्या हम अंदर आ सकते हैं?"

... ...

पूरे बीस सेकंड बाद एक आवाज आई- हमारे साँस छोड़ने की।

हमने फिर खटखटाया। इस बार हमारा आत्मविश्वास बढ़ गया था या घबराहट कम हो गई थी, कौन जाने? पर खटखटाते से ही दरवाजा इतना खुल गया कि हमको पूरा कमरा दिखने लगा। कमरे में कोई नहीं था। एक पल को तो लगा कि मुड़ जाएँ। क्या रखा है मिलने-मिलाने में? ऐसे ही हाँ बोल देते हैं। पर नहीं। आखिर हम अम्मा को क्या जवाब देते?

हम कमरे में दाखिल हो गए। हम दो कदम ही आगे बढ़े थे कि बालकनी से पिंकी जी की आवाज

आई, "यहाँ आ जाइए, हम बाहर हैं।"

हाँ भइया, दौड़ा लो।

ठंड की सुबह, गुनगुनी सी धूप, अब जो हमारा इंटरव्यू होने वाला था बस वो न होता तो सब सुखद था। पिंकी जी हमारा इंतजार कर रही थीं।

खुले बाल, जरूरत से ज्यादा मेक-अप और हरे रंग की साड़ी। देख कर समझ आ रहा था कि कुछ देर पहले साड़ी के साथ जबरदस्ती हुई है। हम फालतू बातों पर टिप्पणी नहीं करते, नहीं तो बता देते कि देवीजी सच में खूबसूरत थीं या हमारी जिंदगी में कन्याओं के अभाव ने उनको अपने आप खूबसूरत बना दिया था।

"हम बबलू, बबलू शुक्ला," दबी आवाज में हमने लगभग खुद से ही कहा। भगवान का शुक्र है कि पिंकी जी को सुनाई दे गया।

"अच्छा, फिर तो हमको भी बताना पड़ेगा," पिंकी जी ने फौरन जवाब दिया, "हम पिंकी, पिंकी शर्मा।" अगले बीस सेकंड के विराम में उन्होंने हमको ऊपर से नीचे तक परख लिया। "आदमी तो तुम टंच मालूम होते हो, हम फालतू का ही टेंशनिया रहे थे," वो बोलीं।

पिंकी जी के व्यवहार पर जो हमारे मन में अभी दो मिनट पहले तक सहमती बनी थी, मतलब जैसा कुछ बिमला काकी ने बताया था, और बाकी जो हमने खुद ही मान लिया था, उस गुनगुनी धूप में ही कहीं खोने लगा। शांत स्वभाव, शर्मीला अंदाज, जो कम ही बोले, पर असरदार। कहाँ भइया! ये तो कॉलेज का प्रॉस्पेक्टस हो गया।

"सुना है अपने गाँव के जाने-माने ठेकेदार हो?"

"बिल्डर..." हमने धीरे से पिंकी जी की बात खत्म की। पर बात खत्म कहाँ? अगर ऐसे ही वो बात खत्म कर दे तो काहे की पिंकी और काहे की शर्मा?

"हाँ वही, बिल्डर... कांट्रेक्टर और भी जो बोलते हो तुम जैसे लोग, खुद का मन रखने के लिए। काम तो वही है ना?"

"जी।"

भगवान कसम हमको लग रहा था कि सालों पहले जहाँ से स्कूल छोड़े थे, आज का दिन वहीं से वापस शुरू हो गया है। बस पूरे क्लास में अकेले हम हैं, और मास्टर साहब अब मास्टर साहिबा के रूप में सामने खड़े हैं।

"समोसे अच्छे थे," हमने थोड़ा रुक कर कहा। अब और कहते भी क्या?

"शुक्ला जी...!" मैडम आगे बोलीं, "सच में इतने भोले हो या बन रहे हो?"

"सच कह रहे हैं," हम बिना कुछ भी समझे बस फूट पड़े, "इतने अच्छे कि कहीं शाहजहाँ खा ले, तो हाथ ही कटवा दे।"

वो मुस्कुराने लगीं।

"चलो इतना तो पता चला कि झूठ बोल लेते हो, पर माहिर नहीं हो।"

जिस तरह उन्होंने हमको मुस्कुरा कर देखा, उस पल में हमारा मुस्कुरा कर नजर झुका लेना, जैसे लाजमी हो गया।

"ना तो हमको देख कर कोई कह सकता है कि हम समोसे बना सकते हैं, और ना ही समोसे को देख कर कि वो हमने बनाए हैं। फिर काहे मेहनत कर रहे हो? हाँ, समोसे बहुते ज्यादा पसंद आए हों तो रास्ते में मिश्रा जी को धन्यवाद बोलते हुए जरूर निकलिएगा। वहीं मोड़ पर, अपने मिठाई वाले, बोर्ड दिख जाएगा। कसम से जादू है उनके हाथ में। और कहीं शाहजहाँ मिल जाए तो दूर ही रखिएगा इस गली से। क्या है कि मिश्रा जी के हाथों के बिना, पूरे मोहल्ले का हाजमा बिगड़ जाएगा।"

"हमने तो खाया भी नहीं," हम बोले।

"तो फिर क्या... स्माल-टॉक?" पिंकी जी मुस्कुराने लगीं, "ऐसा मतलब?"

"हैं?" हमको कुछ भी समझ नहीं आया।

"कुछ नहीं, तुम्हारे सिलेबस के बाहर है।"

"बेइज्जती?"

"हल्का-हल्का," इतना कह कर वो हँसने लगीं। "अब खड़े-खड़े ही अपना दिल तुड़वाओगे या बैठोगे भी।"

9×6 के चेहरे पर हमने साढ़े तीन इंच की घातक स्माइल निकाल कर सामने रखी कुर्सी पर खुद को आराम दिया।

"तुमको कुछ समझ में नहीं आ रहा ना?" वो चेहरे के भाव बदलते हुए बोलीं।

"हमको सुनाई ही कहाँ पड़ रहा है कुछ।"

"इतने भी भोले नहीं हो तुम।"

"वो तो वक्त बताएगा।"

तो अब तक मैच का हाल ये था कि पहले बल्लेबाजी करते हुए हमने कुछ विकेट शुरुआत में ही खो दिए थे। हालाँकि अब पारी कुछ सँभलती हुई नजर आ रही थी।

"देखो, हम नहीं जानते तुम क्या सोच कर आए हो," पिंकी जी अब संजीदा लहजे में बोल रही थीं, "पर अभी हम शादी नहीं करना चाहते हैं।"

और हमको लग रहा था कि 'हम' तय करेंगे। 'ह' और 'म', 'हम'। इतनी नाइंसाफ़ी तो तब भी नहीं हो रही थी जब गब्बर ने कहा था, 'बहुत... नाइंसाफ़ी है'। पर हाँ, उसके बाद जो तीन गोलियाँ हवा

में चली थीं, हम उनको बराबर सुन पा रहे थे- खुद पर चलते हुए। अब हमको समझ में आने लगा था कि बातें किस ओर जा रही हैं। हम चुप-चाप बस बैठे रह गए।

"कान सुन्न पड़ गए क्या?" पिंकी जी ने इस बार थोड़ी ऊँची आवाज में कहा, "कि समझ कम आता है? कमाल आदमी हो बे, हम कह रहे हैं कि हम तुमसे शादी नहीं कर सकते, और तुम्हारा कोई रिएक्शन ही नहीं है।"

हम घर से निकल तो आए थे, पर कुछ भी सोचा नहीं था कि यहाँ क्या होगा। इस गाँव में, शर्मा निवास में, इस छत पर, या आज कहीं भी कुछ भी हो जाए, हमको कुछ खास फरक नहीं पड़ने वाला था। हमारा ब्याह के लिए मान जाना, लड़की देखने भी आ जाना... वगैरह-वगैरह, ज्यादातर तो इसलिए था कि अम्मा चुप हो जाए। पर अब जब अचानक, बराबर बगल में बैठा कर, पिंकी शर्मा ने हमको मना कर दिया था, फरक पड़ रहा था। इतना भी नहीं कि झलकने लगे। पर हाँ, पड़ जरूर रहा था, हल्का-हल्का।

"ये हम बहुत बार सुन चुके हैं," हम बोले।

"क्या?"

"कि हम तुमसे शादी नहीं कर सकते।"

"हमको तो अम्मा ने बताया कि तुम पहली बार किसी को देखने आए हो।"

"मतलब, फिल्मों में। फिल्मों में बहुत बार सुन चुके हैं।"

"मजाक... इस टाइप से?"

"हल्का-हल्का," हम बोले और मुस्कुराने लगे।

"अब देखो शुक्ला जी," कन्या फिर बोली, "कुछ अपने पर मत लेना। बस ये समझ लो कि तुम गलत समय पर गलत जगह आ गए हो। हमको यहाँ या ऐसे ही किसी दूसरे गाँव में नहीं रहना है। हम लाइफ में कुछ करना चाहते हैं।"

"अम्मा कसम हमने ये भी कहीं सुना है," हम माहौल को जबरदस्ती हल्का करने की कोशिश करने लगे।

हमको अनसुना करके उन्होंने आगे कहा, "यार कुछ भी पर्सनल मत लेना। हो सकता है आज से दस साल बाद तुम हमको ऐसे ही किसी गाँव में चूल्हा फूँकते देखो। या शायद किसी अखबार में कोई सनसनी पढ़ो जिसको हमने लिखा हो। कुछ भी हो सकता है। हमको कोई दुःख नहीं होगा अगर हम जर्नलिस्ट न भी बन पाए। पर अगर आज हमने तुमसे शादी करके जर्नलिस्ट बनने की कोशिश ही खत्म कर दी, तो हम अम्मा की कसम खा के कहते हैं, नर्क बना देंगे तुम्हारा जीवन।"

"किसकी अम्मा कसम," हमने धीरे से पूछा, "तुम्हारी या हमारी?"

"दोनों की।"

तो स्थिति ये थी कि हम पारी सँभालने के बारे में सोच ही रहे थे कि तेज बारिश के कारण, मैच रद्द हो गया। नतीजे का तो कोई सवाल ही नहीं था।

"बस फिर," हम उठने लगे, "तुमको जो भी लगता है कि ऐसे समय पर हमको कहना चाहिए, मान लो हमने कह दिया।"

जो भी कह लो, टशन भरपूर था हम में, ये कहते वक्त। पिंकी जी मुस्कुराने लगीं।

हम वापस दरवाजे तक पहुँचे ही थे कि पीछे से आवाज आई, "वैसे आदमी तुम बेहतरीन लगते हो। तुमको लगता है कि हम फिर कभी मिलेंगे?"

"हल्का-हल्का," हमने बस इतना कहा और उनको मुस्कुराता छोड़कर, वापस आ गए।

अब क्या फरक पड़ता है कि हमने नीचे आकर अम्मा से क्या कहा। क्या फरक पड़ता है कि हमारी अम्मा ने पिंकी जी की अम्मा से क्या कहा। क्या फरक पड़ता है कि शाम की जाम गम में चढ़ी या खुशी में। हमारी कहानी का एक अध्याय शुरू होकर खत्म भी हो गया था, और बिलकुल जैसा स्कूल में होता था, हमको कुछ भी समझ नहीं आया।

5. गुणनखंड

'क्या फरक पड़ता है कि किस्मत जैसा कुछ होता भी है या नहीं? कि तुम किसी को खयालों के बंदिश में, हमेशा अपने करीब रखना चाहते हो। कि उसका 'होना' तुम्हारे 'होने' को वाजिब करता है। जिसे आना है, उसे आने दो, जिसे जाना है, उसे जाने दो। जो लौट कर आ गया, वो हमेशा से तुम्हारा ही था, और जो नहीं आया, वो कभी तुम्हारा था ही नहीं।'
बस ऐसी ही बकवास पढ़-पढ़ कर आदमी पगला जाता है। पूरा इंटरनेट भरा पड़ा है ऐसी ही और बातों से। पर लिखने वालों का क्या? जो बिकता है, वो तो लिखेंगे ही। वैसे हम होते कौन हैं किसी के विचार पर विचार देने वाले? फिर भी हमारे मत में ये सब जबरदस्ती की काल्पनिक बातें हैं, जिनका असल जीवन में कोई अर्थ नहीं है।

और ऐसा क्यों?

सवाल बड़ा है। पर जवाब बस इतना सा कि हमको ये सब समझ नहीं आता। और जो हमको समझ में नहीं आता, उसका हमारे लिए कोई अस्तित्व नहीं है। हम ऐसे ही थोड़ी, बचपन में गणित को अनदेखा कर दिया करते थे।

कभी-कभी जब हमारे अंदर एक क्रांतिकारी जागता है, हमारे विचार भी वैसे ही हो जाते हैं। दसवीं तक पढ़े हैं हम, पर खयालात ग्यारहवीं वाले रखते हैं।

हमारा मानना है कि कुल मिला कर, गाँव तीन प्रकार के होते हैं। कोई भी गुणा-भाग बैठा लो, गिन चुन कर इन्हीं में कहीं आ फँसोगे।

पहला होता है सबसे ज्यादा 'गाँव' जैसा गाँव। ये शहर से 40 किलोमीटर या उससे ज्यादा दूर बसा हुआ होता है। पूरे गाँव में तीन हैंड-पंप और एक सरकारी स्कूल होता है। कुछ अमीर घरों में कुँए भी पाए जा सकते हैं। एक-दो मकान छोड़ दो तो बाकी सब कच्चे ही होते हैं। अमूमन आम या जामुन के पेड़ के बाजू से होती हुई एक कच्ची सड़क के किनारे, एक चाय-समोसे की गुमटी होती है। वहीं बगल में होती है नाई की दुकान और एक छोटा सा किराना स्टोर। जी हाँ! ये वही स्टोर है जहाँ kurkure की जगह kurmure और lays की जगह slays मिलता है। ये सड़क, ये आम या जामुन का पेड़ और ये नाई की दुकान, इन सबका अपना महत्त्व होता है। असल में इसी जगह शहर से आने-जाने वाली बस रुकती है। कह सकते हैं कि इस गाँव को शहर से जोड़ने की

यही एकमात्र जगह होती है। इस गाँव की सबसे अच्छी बात होती है कि यहाँ के लोग दिल के बड़े साफ होते हैं।

दूसरा होता है थोड़ा कम 'गाँव' जैसा गाँव। शहर से नापें तो ये लगभग 10 से 40 किलोमीटर की दूरी के आसपास बसा हुआ होता है। पिछली विवरणी के अलावा, यहाँ एक कमरे का एक छोटा सा क्लीनिक भी होता है। यहाँ बैठने वाले डॉक्टर को गाँव वाले भगवान मानते हैं। इन महाशय को डॉक्टरी करने में भले ही दो-चार बैक लग गए हों, किसी को क्या पता, पर इनका टशन करारा होता है। आम तौर पर इस गाँव के सबसे अमीर घराने में एक मारुती 800 भी पाई जाती है। सरकारी स्कूल के साथ-साथ यहाँ दो प्राइवेट स्कूल भी होते हैं। एक पाँचवीं तक, और दूसरा ग्यारहवीं तक। यहाँ के नए युग के लड़के राह चलते अपने चाइना फोन में, कान-फाड़ आवाज में, 'झलक दिखला जा' गाना सुनना पसंद करते हैं। यहाँ की नई पीढ़ी खेती-बाड़ी में विश्वास जरा कम ही रखती है। क्या है कि शहर में इनको 'सेठ' के यहाँ आसानी से काम मिल जाता है। मतलब यूँ कह लीजिए कि यहाँ जीवन ज्ञान के नाम पर बस इतना ही है कि जो मिल रहा है, उतना काफी है, चलने दो। यहाँ की शामें काफी सुकून भरी होती हैं।

तीसरा और आखरी होता है, बहुत कम 'गाँव' जैसा गाँव। जैसा हमारा भरतपुर। ये शहर की सीमा से 10 किलोमीटर के अंदर ही होता है, पर अव्यवस्थित और उपेक्षित राजनीति के कारण कभी मुख्य धारा में नहीं मिल पाता। दो अंग्रेजी मीडियम स्कूल, चार-पाँच क्लीनिक और एक छोटा सा बस-स्टैंड यहाँ की खास पहचान हैं। 90 प्रतिशत घर पक्के होने के अलावा, दुकानें भी ठीक-ठाक ही होती हैं। जी हाँ, वो यहीं के लोग होते हैं जिनको 'गाँव वाला' बोल दो तो बुरा मान जाते हैं। ये लोग इसे गाँव की जगह 'टाउन' बोलना पसंद करते हैं।

हिंदी फिल्मों में अस्सी के दशक में अक्सर एक गाँव दिखाया जाता था जहाँ पूरे गाँव की कमान एक लाला के हाथ में होती थी। महीने में दो बार डाकू भी आया करते थे। सामान्य ज्ञान की बात बस इतनी सी है कि वो बस फिल्मों की बातें हैं। इनका असल जीवन में किसी भी जगह, समाज, समुदाय या किसी भी जीवित अथवा मृत व्यक्ति से कोई संबंध नहीं होता। कम-से-कम 'आज' के भारत में तो नहीं।

कहा ना, हम सोच ग्यारहवीं वाली रखते हैं। अच्छा कुछ लोग अब भी 'हम दसवीं तक पढ़े हैं' में अटके हैं। अब ऐसे क्या सोच रहे हो भाई? वो तो हम बस पास नहीं हुए, बाकी पढ़े तो हैं ही ना।

वैसे इस बकैती के बीच जो उस रोज हुआ, वो बता दें तो हमारी जीवनी लगभग पूरी हो जाए। डबलू के दो बेटे हैं। बड़े वाले का नाम है छोटू, और छोटे वाले का नाम है बूँदी। दस महीने का अंतर है दोनों में। अब इस बात से कोई डबलू की फैमिली प्लानिंग को जज करने लगे तो करे, हमको क्या? हम तो ये इसलिए बता रहे हैं क्योंकि हमारा मानना है कि कहानी से पहले किरदार का परिचय जरूरी है। छोटू जितना सीधा है, बूँदी जी उतने ही रंगीन। हम उनको जान-बूझ कर कोई इज्जत नहीं दे रहे हैं। उनका नाम लेने पर 'इज्जत' खुद पूछती है, 'मैं बाहर आऊँ?' अभी पाँचवीं में ही पढ़ते हैं जनाब, पर पिछले साल जिस दिन से चलती क्लास के बीच महोदय ने लक्ष्मी बम फोड़ा था, उनके नाम पर शिकायतें आती रहती हैं। कुछ बच्चे शरारती होते हैं, और कुछ होते हैं शैतान। क्लास के कोने में बम फोड़ना शायद शरारत होता... होगा, पर उसी बम को मैडम के

पर्स में डालकर फोड़ना, यकीनन शैतानी है।

उस शाम हमने सीमेंट की बोरियों को गिनना शुरू ही किया था कि पीछे से आवाज आई, "हमको कल बूँदी के स्कूल जाना है।"

पलट कर देखे तो डबलू खड़ा था। हम गिनती तो मान लो कि भूल ही गए थे।

"अब क्या कर दिया?" हमने पूछा।

"फोन आया था स्कूल से, तुम्हारी भौजाई पीछे से चिल्ला रही थी तो अच्छे से सुन नहीं पाए।"

भौजाई के आक्रोश के बारे में कभी और बताएँगे, फुर्सत से। अभी तो हम भाई पर तरस खा रहे थे। अब इतना कुछ नियमित रूप से देखने के बाद अगर हम ब्याह के नाम से घबराते हैं तो क्या गलती है हमारी? अरे इतने में भी अगर डबलू पर किसी को दया न आए, तो कोई काहे का इंसान?

"तुमको भी चलना है साथ में," डबलू बोला, "हम अकेले नहीं जाएँगे।"

वैसे ये समस्या हमारी थी नहीं। पर अगर साथ चलने से मना कर देते तो जो अभी-अभी हम डबलू पर इतना तरस खाए थे, डकार बन कर बाहर आ जाती।

"हओ! चल लेंगे," हम बोले।

सो बनी बात ये रही कि अगले दिन हमारा 'बूँदी पुराण' सुनने के लिए स्कूल जाना तय हो गया।

*** *** ***

सूरज वैसे ही निकला था जैसे कड़ाके की ठंड में निकलता है। ओस की मौजूदगी में फीका-फीका सा। खुशी की बात ये थी कि जल्दी उठने का ये हैरत-अंगेज कारनामा बस एक दिन का ही था। आठ बजे हम नहा धो कर घर से क्या निकले, बाहर बंधे गाय-भैंस भी घबरा गए।

हाफ-पैंट भले ही कितनी भी बड़ी हो जाए, कभी फुल-पैंट नहीं बनती। और ये दर्द हर वो इंसान समझता है जिसका बस एक साल से बड़ा भाई है। हम डबलू के घर पहुँचे तो बाहर बूँदी जी पहले ही हमारा इंतजार करते हुए मिले। पीठ पर बस्ता, गले में बोतल और आँखों में काला चश्मा। बाकी हाफ-पैंट का जिक्र तो सब के समझ आ ही गया होगा। कम शब्दों में कहें तो बूँदी जी के भीतर से 'टशन' अविरल रूप से बह रहा था।

"कौन सा आतंक मचा कर आए हो आज?" हमने बूँदी जी के पास आकर कहा।

"ये क्या पूछ रहे हो इससे?" डबलू आते ही पीछे से बोला, "इसका तो बस कहीं पर होना ही आतंक हो जाता है, मचाने की क्या जरूरत है?"

इससे पहले कि कोई और, कुछ और कहता, बूँदी जी आगे बढ़ गए।

जिस तरह बूँदी जी अपने पिता की बात अनसुनी कर के आगे बढ़ गए, वो उसके पिता ने अगर

अपने पिता के सामने किया होता, तो कान के नीचे पड़ते दो, फिर न कुछ सुनने को रहता, ना कुछ सुनाने को। वक्त कितना बदल गया है। कहना जरूरी नहीं है, पर कह दिए।

कुछ देर बाद जब हम स्कूल पहुँचे तो लगा अच्छा हुआ कह दिए। सच में वक्त कितना बदल गया है। मास्टर साहब की जगह सर और मैडम आ गए हैं। ठिठुरती सर्दी में दरी बिछा कर जो खुली धूप में पढ़ाई होती थी, वो तो मतलब अब विलुप्त ही समझो। अब पास भर होने से कुछ नहीं होता भइया, परसेंटेज पूछते हैं लोग। अरे हमने तो सुना है अब बच्चों की अंधाधुंध कुटाई का रिवाज भी खत्म हो गया है। अब बताइए एक्शन-फिल्म में बिना फाइट-सीन के क्या मजा आता होगा?

पुराना कानून कहता था, 'जी आपका ही बच्चा है, बनाकर धोइए'। कहीं लिखा तो नहीं था, पर इस प्रचंड रूप से व्यापक प्रावधान का पालन दो स्तर पर होता था। एक बार स्कूल में और एक बार घर में। आलम यूँ होता था कि स्कूल में पिटे-तो-पिटे, घर पर इसलिए कुटाई होती थी कि स्कूल में क्यों पिटे?

वक्त के साथ कुछ संशोधन हुए, और अब 'हाथ कैसे लगाया मेरे बच्चे को' आ गया है। असरदार कितना है, नहीं जानते। पर नया है, तो चल रहा है।

तो मौसम का हाल ये था कि डबलू और डबलू पुत्र बूँदी उस कमरे के अंदर थे जिसके बाहर लिखा था 'Principal'। बारिश की संभावना जरूर थी, पर हम पर नहीं।

अंदर क्या हो रहा था, हमको नहीं पता। और हमारी कोई खास इच्छा भी नहीं थी जानने की। डबलू पर तरस खा कर हम सुबह-सुबह उसके साथ यहाँ तक आ तो गए थे, पर इसके आगे का सफर भाई को खुद ही तय करना था। यही विधि का विधान है। वैसे हम आगे भी उसका साथ दे सकते थे, पर हमारी भी कोई सीमा है।

आखिर कितना एहसान करेंगे हम डबलू पर? बेचारा ऐसे ही दब कर मरा जा रहा है। हम तो अब ये टटोल रहे थे कि इस बीच आखिर किया क्या जाए?

खुद के साथ विचार-विमर्श करते हुए हमको ज्यादा देर नहीं हुई थी कि पीछे से एक जानी-पहचानी आवाज आई। लड़की की।

"शुक्ला जी...!"

'जी' पर इतना जोर, वो भी किसी कन्या की आवाज में। सोमवार को शनि भारी होने की आशंका समझ आ रही थी। पलटकर देखा तो साक्षात पिंकी शर्मा खड़ी थीं। पहला खयाल - 'अब क्या करें?' दूसरा खयाल - अरे काहे का खयाल, जितनी देर में हम पलटे थे उतने में तो मैडम हमारे करीब आ धमकीं।

आज बस साड़ी का कलर अलग था। बाकी बिलकुल उस दिन की ही तरह, सर्दी की सुबह चटक होती हुई धूप में, खुले बाल और जरूरत से ज्यादा मेक-अप। और थोड़ी सी मोटी लग रही थीं। मतलब... बस थोड़ी सी।

सच कहें तो हमारे मुँह में दही जम गई थी। एक पल को तो कुछ सुनाई ही नहीं दिया। जैसे कान में कुत्ता मूत दिया हो। हमारा तो ऐसा हो गया था कि किसी ने बिल्ली से कह दिया हो- भौंक के दिखा। कमबख्त हम तो 'म्याऊँ' भी ना कर पाए। एक पते की बात बताएँ? जिंदगी कभी किसी को ज्यादा समय नहीं देती। अब उसी समय देख लो, हम कुछ सोच-समझ पाते कि मोहतर्मा आ खड़ी हुई हमारे सामने। अब हम क्या बोलें और क्या न बोलें? पर इससे पहले कि वो कुछ बोलतीं, हमने उनके यहाँ होने के सारे संभावित कारणों को मन-ही-मन, एक-एक कर खारिज कर दिया।

"नाराज लगते हो हमसे, 'हैलो' तक न बोला," देवीजी बोलीं, "अरे कुछ नहीं तो मुस्कुरा ही दिया होता।"

अब उनने कहा तब समझ आया, 'हैलो...' बोलना था। पर अब क्या मतलब जवाब का, अब तो हम एग्जाम हॉल से बाहर आ चुके थे।

"अरे नाराजगी किस बात की?" हमने एक संकोच भरी मुस्कान के साथ कहा, जैसे मुहँ के दो फीट अंदर से मुस्कुरा रहे हों।

"अब हमको तो यही लगा," पिंकी जी ने कहा।

"हमको तो नाराजगी का फंडा ही समझ नहीं आता है," हम ऐसे टशन में बोले जैसे ज्ञान की नदी हमारे घर से ही होकर निकलती हो।

"अब ये क्या बात हुई?"

हमको पता था कि पिंकी जी हमारे देश के उन विलक्षण लोगों में से हैं जिन्हें उनहत्तर और उन्यासी का फरक समझ नहीं आता है। अब इसके बाद हम हैं कौन जो उनको और कुछ समझा पाएँ?

फिर भी, एक कोशिश तो बनती थी।

"दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं," हमने समझाना शुरू किया, "एक वो, जिनको तुम्हारी नाराजगी से कोई फरक नहीं पड़ता। अब सामने वाले को कोई फरक ही नहीं पड़ता तो उससे क्या नाराज रहना? दूसरे वो लोग होते हैं जिनको तुम्हारी नाराजगी का फरक पड़ता है, मतलब उनको बुरा लगता है कि तुम उनसे नाराज हो। अब किसी के दिल में तुम्हारी इतनी जगह है कि उसको तुम्हारी नाराजगी का फरक पड़ता है, तो क्या मिलेगा उससे नाराज रहकर? जाने दो।"

हमारे चुप होने के पहले ही पिंकी जी का ऐसा चेहरा बना, जैसे उनको किसी ने हिंदी की कक्षा में गणित पढ़ा दिया हो।

"क्यों, सही कहा ना?" हमने पूछा।

"बवाल आदमी हो बे तुम," जैसे किसी झटके से उबरते हुए उन्होंने कहा, "पैदाइशी हो कि कोई कोर्स किए हो।"

"कोर्स किए हैं, वो भी अपनी अम्मा से," हम जरूरत से ज्यादा मुस्कुराते हुए बोले।

"फिर तो पैदाइशी कह लो चाहे कोर्स, एक ही बात है," पिंकी जी हँसने लगीं।

यूँ तो अक्सर हमको किसी से फिजूल बातचीत करने में मौत आती है। हमारा मानना है कि 'ना बोलना', 'कुछ भी' बोलने से बेहतर है। नतीजा ये होता है कि अक्सर बकैती के लिए विख्यात जगहों पर हम खामोश नजर आते हैं। क्या है कि हमारी प्रजाति के लोग बातों के सार पर विश्वास रखते हैं। जी हाँ! ये मनुष्य की वही प्रजाति है जो अगर ज्यादा पढ़-लिख ले तो खुद को 'प्रैक्टिकल' कहने लगती है। पुरानी मान्यताओं में इसी को 'सादा जीवन, उच्च विचार' कहा गया है। हम तो कभी-कभी सोचते हैं कि डिस्कवरी वालों की किताब में हम 'असामाजिक जीव' वाली लिस्ट में न आते हों, क्या पता?

सार ये है, जैसा अभी-अभी हम कह रहे थे, हमारा दिमाग सुन्न पड़ गया था कि अब क्या बोलें और क्या न बोलें? तुम्हारी बातों पर एक सुंदर सी कन्या मुस्कुरा रही है, बस... यहीं तक का चक्रव्यूह भेदना सीखा था हमने। जब तक हम सीख पाते कि आगे क्या बोलना है, हमारी अम्मा जरूर सो गई होगी।

"हमको पता है तुम क्या सोच रहे हो," पिंकी जी बोलीं, "यही ना कि कुछ बोलने को नहीं हैं? अब जरूरी तो नहीं कि हम साथ हों तो कुछ बात ही करें। चुप भी तो रह सकते हैं।"

मन की बात? वो भी हमारे? पढ़ लिया? पिंकी जी ने? ऐसे कैसे बे? ये करतब तो हमारी अम्मा दिखाया करती थी। इस उलटफेर की उम्मीद हमको कतई न थी।

"अरे नहीं नहीं," हम मुस्कुराए, ऐसे ही थोड़ी हम मान लेते कि 'तुमने सही कहा', हम बबलू शुक्ला हैं भाई, पहली बॉल तो ट्राई बॉल होती है, आउट काहे का? "ऐसी कोई बात नहीं है," हम बोले।

"अच्छा?"

"और क्या?" एक अलग ही आत्मविश्वास के साथ हमने कहा, "हम तो पूछने वाले थे कि आप यहाँ कैसे?"

"तो पूछा क्यों नहीं?"

"हमको लगा कि आपको पता है हम क्या सोच रहे थे, तो सोचा आप अपने-आप ही बता देंगी।"

"तुम रहने दो अब," पिंकी जी इतना बोलीं और फिर उन्होंने मुस्कुरा कर सिर नीचे कर लिया।

इस दुनिया में कुछ भी सतत नहीं है। अंग्रेजों के लिए बता दें, सतत मतलब स्थिर, नित्य, हमारे आत्मविश्वास जैसा, कुछ ऐसा जो हमेशा के लिए है। हर एक पल, चीजें बदलती रहती हैं। मौसम, समय, खबर, सोच, भावनाएँ, इंसाफ, इंसान... हर कुछ, हर कोई। पिंकी जी ही कितना बदल चुकी थीं हमारे लिए। मतलब तब, जब अम्मा ने हमको उनके बारे में बताया था, जैसे वो किसी शाम की भीनी-भीनी बारिश हों। रूबरू हुए तो समझ पड़ा कि तूफान। अरे! समझ भी कहाँ पड़ा था कुछ। और अब देखो, दूसरे ही मुलाकात में जैसे कोई रेन कोट मिल गया हो। कौनो दिक्कते नहीं। असहजता, हल्के-हल्के ही सही, अब खत्म होते जा रही थी।

"हम यहाँ टीचर हैं," पिंकी जी ने कहा, "पिछले महीने ही जॉइन किया है।"

"भरतपुर में?" हम लगभग चौंकते हुए बोले।

"हाँ, हम इंग्लिश पढ़ाते हैं यहाँ," बड़ी गंभीरता से उन्होंने जवाब दिया। "हमने जर्नलिस्म की पढ़ाई तो कर ली, पर अब इंटर्नशिप का कोई ठिकाना नहीं है। नयूज़ चैनल्स में अप्लाई तो कर दिया है, पर कौन जाने गाड़ी कब आगे बढ़ेगी। अब हमारे घर वालों को तो जानते ही हो तुम, रट लगा रखी है शादी की। घर में रहो तो बस यही सुनने को मिलता है। हमने सोचा अब कहानी फिल्मी हो-तो-हो, हम जा रहे कहीं और। एक खयाल आया भरतपुर वाली मासी का, और दूसरे खयाल से पहले हम यहाँ आ गए।"

अक्सर हम इतना सुनते नहीं हैं, खून में ही नहीं है हमारे, पर आज सुन रहे थे।

"यहाँ आने तक तो ठीक था," हम कहने लगे, "पढ़ाने का क्या शौक चढ़ गया? और शौक-वौक तो ठीक है, जो बच्चों का भविष्य खतरे में आ गया है, उसका क्या?"

सवाल गहरा था, और इलजाम संगीन। पर वो भी उनकी मुस्कुराहटों में कहीं खो गया। अब ऐसे में क्या जवाब और क्या सजा? सच कहें तो हम मजाक नहीं कर रहे थे। पर ठीक है, हमको क्या?

"हमारा छोड़ो... ये बताओ कि तुम कैसे पहुँच गए यहाँ," दो पल की खामोशी के बाद पिंकी जी ने कहा," स्कूल से इतना प्यार?"

"मजबूरी समझती हैं?"

"ऐसी क्या मजबूरी?"

"डबलू का निमंत्रण था आज, तो हमको भी आना पड़ा," हम बोले। "वो पिता का धर्म निभा रहा है, और हम दोस्ती का।"

"सही है," बस इतना कहकर वो मुस्कुराने लगीं। "दो पल को तो लगा कि कहीं तुम भी पढ़ाने-वढ़ाने तो नहीं आ गए?"

"आप भूल रही हैं कि हम नौवीं पास हैं।"

"तो आ जाओ फिर, दसवीं की क्लास में। कुछ नहीं तो इंग्लिश तो पढ़ा ही देंगे।"

"बस यहीं तो हम दोनों के विचार अलग हो जाते हैं," हम हल्के-हल्के टशन में आने लगे थे, "किसी को पढ़ाना है तो गणित पढ़ाओ। अरे! अंग्रेजी कोई 'पढ़ाने' की चीज थोड़ी है। अंग्रेजी तो झाड़ने की चीज है।"

हमने इतना भर कहा था कि पिंकी जी खिलखिला कर हँसने लगीं। सर्दी में सुबह का वक्त, भीनी-भीनी धूप में हम दोनों, हल्की-हल्की हवा में पेड़ों से पत्तों का टूट कर हम पर गिरना। कभी हमारा मुस्कुरा देना, कभी उनका खिलखिला देना। अगर ये कोई फिल्म चल रही होती तो बस ये वही समय था जब हमको हिरोइन से प्यार होना था। पर नहीं...

"तुम 'यहाँ' का कर रहे हो बे, हम ऑफिस के बाहर ढूँढ़ रहे थे तुमको," डबलू हम तक आते हुए बोला। अब कहीं तो विलेन की एंट्री होनी थी, यहीं सही। आते-आते भाई की नजर पिंकी जी पर भी पड़ी।

"लग गए अब तो," डबलू हल्के-हल्के बड़बड़ाया।

दरअसल बात ये है कि डबलू को पिंकी जी फूटी आँख नहीं सुहाती हैं। ऐसी कोई जाति-दुश्मनी नहीं है, पर क्या है कि भाई दोस्ती का फर्ज निभा रहा है। अब जिसको तुम्हारा दोस्त पसंद न आए, उससे क्या सरोकार?

कम शब्दों में बता रहे हैं इसलिए ध्यान दीजिएगा।

हड़बड़ी में उस दिन शर्मा निवास में सिर्फ हाँ-ना ही हो पाई थी। उसके बाद भी कारणों पर शोध और अध्ययन एक लंबे समय तक जारी रहा। तो शुक्ला खानदान की ओर से सारी बातचीत और प्रस्तुतीकरण की जिम्मेदारी डबलू को दी गई थी। और जितनी प्रस्तावना हमने पहले ही दे दी है, उससे ये तो सब समझ गए होंगे कि इसमें डबलू भइया का अनुभव, कोई खास अच्छा नहीं रहा।

"क्या बात है? किसने सोचा था कि आपके भी दर्शन यहीं होंगे?" पिंकी जी ने डबलू को देखकर कहा।

जी हाँ! ये व्यंग्य था। डबलू के लिए आई पहली ही गेंद बाउंसर निकली। हमको तो अब मैच के रोमांचक होने की उम्मीद नजर आ रही थी।

"अब हमारी ही किस्मत फूटी है," डबलू जवाब देने के लहजे में बोला, "तो क्या कर सकते हैं।"

ये था अगली ही बॉल पर गेंदबाज के सिर के ऊपर से, खूबसूरत छक्का।

"वो तो आपकी हालत देख कर ही समझ आ रहा है।"

इस बार काफी सधी हुई गेंदबाजी। गेंद दूर-दूर तक बल्ले के पास नहीं। बल्लेबाज पूरी तरह से बीट हुए।

"समझ... आपको... वो भी 'आ रहा है', नहीं नहीं नहीं... हम ये नहीं मान सकते। हमने तो सुना था समझने के लिए दिमाग लगता है।"

कलाइयों का खूबसूरत इस्तेमाल और ये रहा कवर की दिशा में, बेहतरीन चार रन।

"तभी!" पिंकी जी पलटकर बोलीं, "तभी हम सोचे आपको कुछ समझ काहे नहीं आता है?"

गेंदबाज का शानदार कम-बैक और बल्लेबाज क्लीन बोल्ड। बैट और पैड के बीच से जाती हुई गेंद ने ऑफ स्टंप उखाड़ फेंका।

जैसा माहौल तन गया था, लग रहा था हाथापाई तक तो बात जाएगी ही। अब काहे झूठ बोलें, हमको मजा बहुत आ रहा था। पर तीसरे विश्व युद्ध को भी तो हमको ही रोकना है ना।

"तुम एक काम काहे नहीं करते," हमने मैच को बीच में ही रोकते हुए डबलू से कहा, "बाहर

चलो, गाड़ी-वाड़ी निकालो, हम आते हैं।"

डबलू कुछ बोलने को हुआ पर उसने अचानक अपने आप को रोक लिया। वैसे हम समझ गए थे कि कौन सी गाली बाहर आते-आते रह गई? अब इतना भी न समझ सकें तो काहे के बचपन के दोस्त? हमने स्वीकृति में सिर हिला दिया, और डबलू आगे बढ़ गया।

"तो चलें फिर?" हमने पिंकी जी से कहा।

"दोबारा मिलने का वादा कर सको, तो शौक से जाओ।"

"आपसे मिलने के लिए हमको किसी वादे की जरूरत नहीं है," हमने कहा और चलते बने।

गौर करें, तो टशन कम नहीं होने दे रहे थे हम। पलटते-पलटते जितना हम देख पाए थे, मोहतर्मा मुस्कुरा रही थीं। वैसे भी हमने डायलॉग कोई 'कम फिल्मी' थोड़ी मारा था।

हमारे जीवन में स्थित 73 प्रतिशत लोगों को लगता है कि हमारा जनम सिर्फ जनगणना के लिए हुआ है। मतलब कुछ काम नहीं है। हालाँकि इनमें वो लोग ज्यादा हैं जो हमसे जलते हैं। खुशी की बात ये है कि हमको पता है कि तुम सबको खुश नहीं कर सकते। अक्सर ये वो लोग होते हैं जिनको तुम्हारे होने-न-होने से कोई फरक नहीं पड़ता। फिर भी वो होते हैं, तुम्हारे इर्द-गिर्द। कभी दिखावे के दोस्त बनकर, तो कभी परेशान कर देने वाले पड़ोसी बन कर। कभी वो अंकल बनकर जो तुमको देखकर अपने बेटे पर और ज्यादा गर्व करते हैं, तो कभी वो रिश्तेदार बनकर जो बस रिजल्ट वाले दिन फोन करते हैं। और ऐसे लोगों से भरी दुनिया में तुमको जीना होता है। हम मानते हैं कि थोड़ा कठिन है। पर किसी महान इंसान ने कहा है, 'चल ना बे।'

हम इस बात से खुश थे कि जितना हम पिंकी जी को जान पाए थे, वो इन 73 प्रतिशत लोगों में से नहीं थीं।

6. साधारण ब्याज

'पिं की शर्मा घटनाक्रम' के बाद अब अम्मा के मन में हमारे ब्याह करने की कोई उम्मीद नहीं बची थी। हो सकता है कि बची भी हो, पर हम न समझ पाए। हमारी अम्मा की सोच जिस लेवल पर होती है, वहाँ से तो न्यूटन के सिद्धांत भी नजर नहीं आते। हम कौन होते हैं झाँकने वाले? हाँ, पर इतना जरूर है कि अब खाने के साथ हमको ताने नहीं परोसे जाते थे। धंधा भी अच्छा चल रहा था। वजन कम होने के आसार दिख रहे थे और भारत चौथे दिन का खेल खत्म होने तक ऑस्ट्रेलिया के खिलाफ बढ़त बनाए हुए थी। कह सकते हैं कि जीवन काफी सुखद था। उस रोज हमारा मन काम में लगने ही वाला था कि फोन बजा 'टिड़िंग'। अब फोन है, बना ही बजने के लिए है। क्या कर सकते हैं? अक्सर इन आवाजों से हमारा ध्यान भंग नहीं होता है। अरे दीदी! नहीं चाहिए कॉलर ट्यून। और वो एक करोड़ का इनाम भी ले जाओ। खुद ही रख लो चाहे अनुराधा को दे आओ, नहीं चाहिए हमको। गिन के यही दो मैसेज तो आते हैं हमारे पास। बेहतर यही होता है कि इन फिजूल की 'टिड़िंग-टिड़िंग' पर गौर न फरमाया जाए। पर उस दिन हमने एक नजर मार ही लिया।

'Getting bored'

एक अनजान नंबर से ये मैसेज था। तब की हालत ये थी कि अंग्रेजी हमारी जरा कमजोर थी। 'जरा' मतलब 'बहुत'।

पहली खलबली मची कि ये है कौन? दूसरी ये, कि कमबख्त लिखा क्या है? हमने अपने आस-पास मुड़ कर देखा। सामने टेबल की आड़ में कुछ हिसाब लगाता हुआ, डबलू बैठा था। दरवाजे के बाहर चार मजदूर रेती छानने में लगे हुए थे। पाँच-छह मजदूर ट्रक में सीमेंट लाद रहे थे।

दूसरे शब्दों में कहें तो जिस प्रजाति के लोगों से हम घिरे हुए थे, उनको न 'getting' का G समझ आता था, और न 'bored' का B। ये वो लोग हैं जिनको 'अंग्रेजी' के नाम पर बस वो 'लाल-हरे' बोर्ड नजर आते हैं, जिनके बाहर अक्सर लिखा होता है, 'शराब सेहत के लिए हानिकारक है'।

अगर कोई इस बात से आहत हुआ है कि हम किसी के अनपढ़ होने का मजाक उड़ा रहे हैं, तो दो बातें शायद उसकी तकलीफ थोड़ी कम कर दें। पहली ये कि हम भी उसी प्रजाति के लोगों में से एक थे। कम-से-कम तब तो थे ही। और दूसरी ये कि हम मजाक नहीं उड़ा रहे हैं।

हाँ, पर ऐसा भी नहीं था कि हम पूरे डब्बा थे। मास्टर साहब की छड़ी ने हमको A-B-C-D जानने, और अक्षरों को जोड़-तोड़ कर बस पढ़ लेने वाला गुण तो दे दिया था। पर इतने से काम नहीं चलने वाला था। दो मिनट सोचने के बाद हमने फिर अपने आस-पास देखा। न माहौल में कोई परिवर्तन हुआ और ना ही वहाँ मौजूद लोगों में।

इतने में हुआ ये कि फोन फिर से बजा 'टिड़िंग'। नंबर वही था, पर मैसेज में लिखा था, 'It's Pinki'। स्क्रीन देखा तो दिल एक बार के लिए धड़ाम से धड़का और फिर अचानक रुक गया। साँस आई तो धड़कन जरा तेज हो चली थी।

राजाओं के जमाने में जब किसी राज्य पर हमला होता था, तो राजा महाराजा अपने आस-पास के राज्यों से मदद की गुहार लगाते थे। "पिंकी जी का मैसेज आया है," हमने लड़खड़ाते शब्दों में डबलू से कहा। ये राजाओं वाली बात दिल पर न ली जाए, वो तो हमने बस यूँ ही कह दिया।

"हैं!" डबलू चौंक गया, "मैसेज! पिंकी का! तुमको! अभी! सपना रहे हो का बे?" वैसे पड़ोसी राज्य राजनीति के दायरे में रहकर जितना भी हो सकता था, मदद जरूर करते थे। "क्या लिखा है?"

"कुछ अंग्रेजी में है," हमने कहा, "का करें?"

"प्रकाश कहाँ है?" डबलू ने तुरंत पूछा।

हर कहानी में हर किरदार का एक निश्चित कार्य होता है। चाहे रामायण में 'नल-नील' हों, या 'शोले' में 'साँभा'। ऐसे ही हमारी आत्मकथा में प्रकाश का अहम रोल है। कह सकते हैं कि हमारे मंत्री मंडल में प्रकाश ही ऐसा व्यक्ति था जो हमारे राज्य को उस दुविधा की घड़ी से निकाल सकता था। लड़का इंजीनियर है, आधा, पर जब साथ में रखा था, तब कोई कहाँ सोच सकता था कि भाई ऐसे काम आएगा। उससे पढ़ाई पूरी हो पाई हो-न-हो, पर शहर के तौर तरीके जरूर सीख गया है। फर्ज के लिए 'अंग्रेजी'।

"बस आ ही रहे हैं, रास्ते में हैं," फोन के उस पार से प्रकाश बोला। इतिहास गवाह है कि एक बार में तो भाई फोन उठाएगा ही नहीं। पता नहीं कहाँ डाले रखता है? पर ऊपर वाले की महिमा देखो, आज एक बार में ही उठा लिया।

"तुम्हारी डिक्शनरी कहाँ रखी है?" हमने पूछा। बड़ी अजीब सी चुल्ल मची थी हमारे अंदर। और पता भी था कि हमारे लिए किसी डिक्शनरी का होना-न-होना एक ही बात है। पर रहा भी तो नहीं जा रहा था।

'उम्मीद' और 'उत्सुकता' का एक साथ होना, एक-एक 'पल' गुजारने को भारी बना देता है।

"बस पाँच मिनट। पहुँच ही गए, आकर बताते हैं," उधर से फोन रखते हुए प्रकाश बोला। इस बात में कोई दो-राय नहीं है कि हमारे देश का हर व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति को जानता है जिसका पाँच मिनट, आधा घंटा होता है।

कम-से-कम।

या तो इनकी घड़ी अलग ही चलती है, या फिर इनको टाइम का कंसेप्ट समझ नहीं आता। हो सकता है इनके एक मिनट में दो-तीन सौ सेकंड होते हों। या शायद इनको ये लगता है कि सामने वाले को घड़ी देखना नहीं आता होगा। बड़े अजीब से लोग होते हैं ये।

अपने प्रकाश बाबू भी इन्हीं लोगों में से एक हैं।

अब क्योंकि भाई ने कह दिया था कि पाँच मिनट में आ रहा है, तो हमको पता था कि अभी देर है। और इस देरी के दौरान जो व्याकुलता हमारे और डबलू के अंदर थी, उसका चरम डबलू ने दिखा दिया।

"ये देखो!" फोन रखने के कुछ देर बाद डबलू एक मुरझाई सी किताब लेकर हमारे सामने आ खड़ा हुआ।

"क्या है ये?"

इतने में तो वो किताब हमारे हाथ में थी। झक सफेद कवर पर लाल रंग से लिखा हुआ था, '30 दिन में सीखें फर्राटेदार इंग्लिश'। और ठीक उसके नीचे, 'कमल पब्लिकेशन की खास पेशकश'। 'मूल्य 10 रुपए'।

"हमने गिन लिया है, कुल छप्पन पन्ने हैं इसमें। आधे-एक घंटे में तो अम्मा कसम झाड़ के अलग कर दोगे। अंग्रेजी फिल्म के हीरो एकदम। क्या कहते हो?" डबलू की आँखों में चमक आ गई थी।

हम सबके जीवन में वो एक क्षण आता है, जब हम अपने अस्तित्व पर सवाल करने लगते हैं। ऐसा सवाल, जिसका कोई भी जवाब नाकाफी होता है। हमको कुछ नहीं हुआ था, पर अगर अगले दो मिनट में प्रकाश वहाँ न पहुँचता, तो कसम गंगा मईया की, डबलू के जीवन में हम उसी समय वो पल ला देते।

वैसे जितना सबने मान लिया, हमारा डबलू उतना भी भोला नहीं है। कभी मिलो उससे, दो-एक बोतल उतरने के बाद। भाई अच्छे-खासे चढ़े-चढ़ाए लोगों को भी उतार दे। कहाँ से? ये मत पूछो। वो तो होश में थोड़ा कमजोर पड़ जाता है। बाकी कभी नशे में सुनना, बात ‘धरती चपटी है’ से लेकर ‘जीवन के अर्थ’ तक जाती है। फिर तो क्या सरकार और क्या सरोकार? सब पर चर्चा यूँ कि कहीं कोई बुद्धिजीवों की महफिल लगी हो।

*** *** ***

"क्या लिखा है मैसेज में?" प्रकाश अंदर आते ही बोला।

"पता होता तो तुमको काहे बुलाते?" डबलू तपाक से बोला।

अगर ये कोई आम दिन होता, और कोई आम मसला होता, तो प्रकाश जवाब जरूर देता। पर आज मामला जरा गंभीर था। प्रकाश डबलू की बात अनसुनी कर हमारे पास आ गया। हम इस बात पर कोई टिप्पणी नहीं करेंगे कि उसको हमने अपना फोन दे दिया, या उसने हमारे जेब से खुद ही निकाल लिया।

"लिखा है Getting Bored," उसने पहली निगाह मार कर कहा।

"अबे इतना तो डबलू भी समझ गया था," हम बोले, "मतलब क्या है इसका?"

आखरी बार हम इतने उतावले तब हुए थे, जब शक्तिमान ने कीटाणु-मैन को मारा था।

हमारा दिल रखने के लिए प्रकाश ने दोबारा पढ़ना शुरू किया। इस बार उसने 'G' पर जितना जोर दिया था, एक पल को तो लगा कि अपना आखरी सूरमा भी ढेर। पर ऐसे कैसे? आधा इंजीनियर है भाई।

"कह रही हैं कि उनका मन नहीं लग रहा है," प्रकाश बोला।

"अबे तो हमसे काहे कह रही हैं?" एक व्याकुलता शांत हुई, तो दूसरा असमंजस सामने आया। ये उन सवालों में से एक था जिसका उद्देश्य कोई जवाब पाना नहीं था। ये तो बस मन में, खुद-को खुद-ही जवाब देकर कुछ समझा लेने के लिए रचा गया स्वांग था।

समझा भी वो लेना, जो 'दिल' समझना चाहता है।

"यहाँ किसी और को जानती नहीं होगी," डबलू ने कहा।

"अब क्या फरक पड़ता है काहे कह रही हैं," विशेषज्ञ प्रकाश ने बड़ी शालीनता से अपनी बात रखी, "बह रहा है तो धो लो। कहाँ आप भी लगे हैं फालतू की बकैती में?"

उधर हम प्रकाश के ज्ञान की गंगा समेट ही रहे थे, इधर भाई ने जवाब भी दे दिया।

'ham nhin hain na tumhare paas, bas isiliey'

"ये क्या लिख दिया?"

"देखो भइया," विशेषज्ञ महोदय समझाने लगे, "देश की 83 प्रतिशत लड़कियों को लगता है कि वो 'सिमरन' हैं। पर दिक्कत ये नहीं है, दिक्कत तो ये है कि ये बात सिर्फ 38 प्रतिशत लड़कों को पता है। इन 38 प्रतिशत लड़कों में से आधे जरूरत पड़ने पर खुद को 'राज' बना लेते हैं, तो दुल्हनिया भी ले जाते हैं, बाकी आधे रह जाते हैं आपकी तरह, जिनका कोई कुछ करेगा तो उनकी अम्मा, नहीं तो जय सिया-राम। आपकी कहानी में जितना हम समझ पा रहे हैं, ये तो तय है कि गिटार लेकर सरसों के खेत में गाना गाने का वक्त आ गया है। और अगर अब भी कुछ नहीं कर पाए, तो बैठे रहना चमत्कार की उम्मीद में।"

दिल को ऊपर-नीचे कर देने वाला भाषण अभी अच्छे से खत्म भी नहीं हुआ था कि हमारा फोन फिर से बजा 'टिड़िंग'। पिंकी जी का एक और मैसेज था।

'Confidence!' लिखा था।

'Over Confidence', इधर से प्रकाश ने फौरन जवाब लिखा।

अगली 'टिड़िंग' पर खुशी से पागल होते हुए दो छोटे-छोटे चेहरे आए। कमबख्त हँस भी रहे थे, और रो भी रहे थे। साथ में लिखा था, 'Kuch famous hai yaha, tumhare alawa?'

'Kuch kya, bahut kuch hai...'

'Aur ham yha ghar par baithe bore ho rhe hain'

*** *** ***

लड़कियाँ ये मैसेज-मैसेज वाले खेल की शुरुआत हमेशा अंग्रेजी से क्यों करती हैं जब चार सेकंड बाद हिंदी में ही आना होता हैं? कुछ सवाल हैं जो आज भी संसद में उठने चाहिए, पर नहीं। इनसे तो बस नोट बंद करा लो।

अब बातचीत हिंदी में होने लगी थी। चूँकि मैटर अब हमारे लेवल पर आ गया था, स्थिति की सारी जवाबदारी हमने सँभाल ली थी। हाँ, पर मौके की नजाकत को देखते हुए हमने प्रकाश और डबलू को हिलने भी न दिया।

हमने तो अब ध्यान दिया था, सारे मजदूर सब काम छोड़-छाड़ कर हमारा हौसला बढ़ाने में लगे हुए थे। सब के सब झुंड बना कर हमारे सामने आ बैठे थे। दर्शकों में ऐसा उत्साह तो बस रामलीला में ही देखने को मिलता है। हर एक 'टिड़िंग' के बाद पूरे खेमे में खलबली मच जाती, इस बार जाने क्या पैगाम आया होगा? फिर प्रकाश और डबलू सबको माहौल समझाते। हमारी हर बेहतरीन वापसी के बाद, सब फिर मुस्कुराने लगते। ऐसा लग रहा था जैसे हम उनकी ओर से खेल रहे हैं और पूरे गाँव की इज्जत दाँव पर लगी हुई है। सच कहें तो ये उनसे ज्यादा हमारे लिए नया था।

प्रकाश के साथ होने से रह-रह कर उठते अंग्रेजी के तूफान का सामना करने में किसी तरह की बाधा नहीं आई। और डबलू... उसका कुछ काम नहीं था, वो तो बस मनोबल बढ़ाने के लिए बैठा था। और भीड़।

ये 'टिड़िंग-टिड़िंग' इसी तरह सिलसिलेवार तौर पर लगभग आधे घंटे तक चला। क्या पता मोहतर्मा की बोरियत खत्म हुई या नहीं? क्या फरक पड़ता हैं? पर अगले दिन शाम 6 बजे मिलने का प्रोग्राम जरूर बन गया। भारत तो वैसे ही पर्वों का देश है, पर जो जश्न का माहौल पूरे गोडाउन में बन गया था, उसकी बात अलग थी।

अब किसको बताएँ कि अपनी वो रात जो कटी, पूरी आशिकों वाली थी। एक करवट इधर, तो एक करवट उधर। जीवन में 28 साल कुछ न होने के बाद अगर ऐसा कुछ हो, तो जो हमको हो रहा था, होना लाजमी है। उलझन तो कमबख्त ये थी कि सुबह-सुबह बस अम्मा को बताना है या अखबार में ही छपवा दिया जाए? हमको क्या हो गया था, हम नहीं जानते। अरे! इतने ज्ञानी होते तो अस्पताल न खोल लेते? मौसम तो जैसा बना था, न डर लग रहा था, और ना हम नरबसा रहे थे। ये तो कोई और ही कीड़ा था।

7. चक्रवृद्धि ब्याज

हर रोज ठीक सात बजकर छत्तीस मिनट पर, एक हाथ में पूजा की घंटी और दूसरे हाथ में दिया लेकर अम्मा पूरे घर का चक्कर लगाते हुए, हमारे कमरे में दाखिल होती है। चूँकि इस घटनाक्रम का उद्देश्य हमको जगाना नहीं होता है, हमारी ओर से किसी आपत्ति का कोई सवाल नहीं है।
कोई आपत्ति होती भी तो जैसे अम्मा मान जाती?

पूरे दिन में यही एक समय है जब सही मायने में नींद का आनंद आता है। हाँ! सच कह रहे हैं। आधी खुली नींद में जब और सोने को मिल जाए, इससे बड़ा और 'कोई' सुख नहीं है। पर आज की कहानी का सीन थोड़ा बदल गया था। इतना बदल गया था कि न तो रात में नींद जल्दी आई, और ना सुबह वो सुख मिल पाया। नींद न आने का कारण तो जग जाहिर है। सुबह दिक्कत ये आई कि 7 बजे ही प्रकाश और डबलू हमारे घर आ धमके।

"भइया उठ जाओ," प्रकाश हमारे मुँह से रजाई हटा कर बोला।

कभी बस यूँ ही, बिना कारण, किसी का मुँह तोड़ने का मन हुआ है?

ऐसा नहीं था कि हमको किसी ऐसे सपने से उठा दिया गया हो जिसमें हम ही भगवान थे, पर क्या है कि खाने के बाद अगली जो चीज हमको प्यारी है, हमारी नींद, उसमें विघ्न पड़ चुका था।

अधूरी सी नींद और उस नींद के अधूरे रह जाने का गुस्सा लेकर हमने अनमने ढंग से कहा, "कोई कमी है का बे तुमको?" यहाँ पर मान लिया जाए कि प्रकाश को उसके कृत्य के अनुरूप दो-चार उचित गालियाँ मिल गई थीं।

अरे नहीं! वो नहीं जो आप सोच रहे हैं। उससे एक लेवल ऊपर जाना होगा।

हाँ! ये ठीक है।

"हमको नहीं, आपको कमी है, हमारा मतलब है कि हो जाएगी अगर जल्दी नहीं उठे तो," प्रकाश हड़बड़ी में बोला।

जो अभी तक हमको एक बेहुदा मजाक लग रहा था, प्रकाश की लगभग-लगभग घबराई आवाज सुन कर किसी समस्या सा प्रतीत होने लगा। अभी-अभी बीते 6 सेकंड में हमारा गुस्सा लगभग

खत्म हो गया था। थोड़ी झुंझलाहट बची थी, पर 'गुस्सा' हमारे 'ध्यान' के साथ कहीं और ही निकल चुका था।

इंसान का दिमाग एकदम क्लियर होना चाहिए कि उसको जीवन में क्या चाहिए। बाकी क्या फरक पड़ता है कि जमाने में क्या हो रहा हैं? और क्यों? ये सन्दर्भ था उस प्रसंग और व्याख्या के लिए, जो आगे हम डबलू की करने वाले हैं।

जब हम उठे तो पता पड़ा कि प्रकाश भरी सुबह हमारे पास अकेला नहीं आया था। डबलू भी था साथ में। पर इस घटनाक्रम के बीच, कमरे में दीवार से सट कर रखी कुर्सी पर आराम से बैठे डबलू भाई साहब, ठंडी दही के साथ पराठे का मजा ले रहे थे। अपनी ही दुनिया में मस्त। वैसे वो भी कहीं-से-कहीं तक गलत नहीं है। बेचारा ज्यादा सोच नहीं पाता है ना, तो अक्सर जितना भी 'जीवन' नजरों के सामने होता है, उतने में जो भी सबसे जरूरी काम हो, करने लगता है। इस पर अम्मा का लाड़-प्यार अलग, तो प्रोग्राम चल पड़ा।

"या तो सीधे-सीधे बोल दो क्या हुआ, या तुम भी पराठे लील कर निकलो यहाँ से," हमने प्रकाश से प्यार से कहा। किसी का ध्यान नहीं गया हो तो साफ कर दें, यहाँ पर 'प्यार' व्यंग्यात्मक रूप में प्रयोग किया गया है।

"अरे भइया! अभी बकैती का टाइम नहीं है," प्रकाश बोलने लगा, "सुन लो, समझ लो, चाहे तो लिख लो कहीं। शाहिद भाई का फोन आया था। पटेल बाबू पर इंक्वायरी बैठ गई है। चार दिन से अफसर लोग उनके दफ्तर में ही बैठे हैं। बाहर से कोई टीम आई है। उनका पूरा ऑफिस सिर पर ले रखा है उन लोगों ने। गलती से अपनी कोई फाइल हाथ लग गई, तो जय सिया-राम।"

बस जैसा अभी-अभी सबको अचानक लगा, वैसी ही व्याकुलता हम में भी जागी थी।

वो जो फिल्मों में हीरो के पास विलेन का फोन नहीं आता है, कि हिरोइन को अगवा कर लिया गया है; सलामती चाहते हो तो खुद को हमारे हवाले कर दो, वगैरह-वगैरह। बस, हमारे कान वैसे ही सुन्न पड़ गए थे। हमारी हिरोइन, श्री चमन पटेल, एक हिसाब से अगवा ही हो गई थी। और इस फिल्म में विलेन का किरदार निभा रही थी 'सेंट्रल विजिलेंस कमीशन' की जाँच कमेटी।

"हम तो प्रकाश को समझा रहे हैं कि टेंशन की बात नहीं है," पीछे से डबलू आखरी कौर गटक कर बोला, "हमारे हिसाब से इस बात का धंधे में कोई खास फरक नहीं पड़ेगा। अब कोई पटेल बाबू के माथे ही थोड़ी बैठे हैं यहाँ। बहुत काम है हमारे पास। साल का एक-आधा ठेका चला भी गया तो क्या? इतना लोड थोड़ी लेंगे।"

भोलेपन और बुद्धिहीनता के बीच एक बहुत बारीक रेखा होती है। कभी-कभी तो समझना मुश्किल हो जाता है कि इंसान इस पार खड़ा है या उस पार। हम और प्रकाश तो इस बात से चकित थे कि डबलू को ये काहे नहीं समझ आ रहा कि बात सिर्फ आज से आगे की नहीं है। अगर फाइल खुली, तो जो कार्यक्रम पीछे हुए हैं, सब चौपट हो जाएँगे। रिश्वत देने से लेकर धोखा-धड़ी तक, सारे इलजाम लग जाएँगे। अरे! धंधे का जो होना है वो तो होता रहेगा, इज्जत की जो बारह बजेगी उसका क्या?

"शाहिद भाई ने कुछ और कहा क्या?" हमने प्रकाश से पूछा।

"कह रहा था मिल लेते तो अच्छा रहेगा।"

"आज ही चलते हैं फिर, शहर जाना ही है, दफ्तर होते हुए चल चलेंगे।"

"दफ्तर नहीं," प्रकाश उत्तेजित हो उठा, "दफ्तर में ही तो अफसर लोग घात लगाए बैठे हैं। शाहिद कह रहा था कहीं और मिल लेंगे। एक बार पता तो चले कि मामला क्या है, और कितना गंभीर?"

*** *** ***

तय किए स्थान पर जब हम तीनों पहुँचे, चमन बाबू अपने असिस्टेंट शाहिद के साथ पहले से ही आए हुए थे। पहले की मुलाकातों में चमन बाबू के चेहरे पर जो कुटिलता और चाँद सी चमक नजर आया करती थी, वो आज किसी विहार के लिए निकली मालूम पड़ रही थी। टेबल पर दो चाय रखी थी, ठंडी होती हुई। देश में जो चाय के उपासक हैं उनके लिए ये संवैधानिक चेतावनी है। उनको आगे के कुछ शब्द विचलित कर सकते हैं।

चाय के ऊपर का हिस्सा जितना गाढ़ा हो गया था उससे दो बातें साफ थीं, एक तो ये कि उस चाय को इस टेबल पर उपेक्षा के अलावा और कुछ नहीं मिला, और दूसरा ये कि हमको आने में जरा देर हो गई थी।

"अरे यहाँ कहाँ बुला लिया?" प्रकाश सामने आते ही बोला।

दरअसल जिस जगह पर अभी हम सब थे उस जगह का नाम था 'डडन की टपरी'। बाहर से देखने पर साधारण सा देसी अड्डा, चाय सुट्टा उड़ाने का। थोड़ी गहराई में जाकर बात करें तो टिन के बाड़े की आड़ में खड़ा दिखता है टपरी का मालिक डडन। उसके सामने होती है उबलती हुई चाय और सिर के दो फीट दूर टंगा दिखता है एक पीला बोर्ड जिसमें लिखा हुआ है, 'चाय! full 10/- cut 5/-'। इस पूरे संस्थान में जिक्र कर दी गई संपत्ति के अलावा एक टेबल नजर आती है जो खुद इतनी जर्जर हो चुकी है कि अब धरती में विलीन हो जाना चाहती है। उसी से सट कर गिनती की चार कुर्सियाँ भी रखी होती हैं, जिनमें से तीसरी का, चौथा पैर बाकी तीनों से दो इंच छोटा होता है। कोई भी साधारण समझ और इस जगह की खास परख रखने वाला इंसान, इस पर बैठता नहीं है। जानकारी के लिए बता दें कि इस कुर्सी का ये पाया तब से टूटा हुआ है, जब से इस टपरी का उद्घाटन हुआ था।

नहीं! बिलकुल भी जरूरी नहीं था हमारे लिए ये दृश्य वृत्तांत जाहिर करना। डडन कोई फूफा नहीं है हमारा। पर बात ऐसी है कि 'जो दिखता है वो होता नहीं, और जो होता है वो दिखता नहीं' सिर्फ एक डायलॉग नहीं, सच्चाई है। टपरी के बाहर का सीन बिलकुल चुनावी वादों की तरह एक छलावा है। उस झूठ की तरह जो किसी सच को छुपाए रखने के लिए सच मान लिया गया हो। यहाँ पर असल कार्यक्रम तो बगल की सीढ़ी से एक फ्लोर नीचे जाने पर होते हैं।

जिस फ्लोर का जिक्र अभी-अभी छिड़ा है, हर किसी को उसकी जानकारी नहीं है। वो तो लोगों को 'नीड टु नो बेसिस' पर ही दी जाती है। इतनी अंग्रेजी! अम्मा कसम हम तो लिखते-लिखते शर्मा

रहे हैं। पर अब जो यहाँ-वहाँ से हल्का-हल्का सीख गए हैं, कहीं तो निकलेगा।

ये वो जगह है जहाँ शहर के सभी नॉन-वेज पंडित, दुनिया से छुप-छुप कर अंडे और चिकन उड़ाते हैं। वो जगह जहाँ ड्राई-डे पर भी सूखा नहीं पड़ता। यही वो जगह है जहाँ सरकारी अफसर अपने खास मित्रों से मिलते हैं और लक्ष्मी जी की सेवा, अर्चना, उपासना इत्यादि करते हैं। सरकारी दफ्तर तो बस एक ढोंग है, बिलकुल उस 'खिच्च' की आवाज की तरह जो शादियों में फोटो वाले भइया बच्चों के सामने फ्लैश चमका कर बोलते हैं। इसी जगह सब वादे होते हैं, यहीं सब टेंडर पास होते हैं। यही जगह साक्षी है इस शहर के 'विकास' से लेकर, 'विकास होते-होते रह जाने' तक का। सरकारी भवन से ज्यादा दूर न होने के कारण, यह स्थान पूरे जिले में होने वाली ऐसी सभी गतिविधियों का केंद्र बना रहता है।

"जहाँ सब कुकर्म किए वहीं बुला लिया," डबलू अपनी असहजता जाहिर करते हुए बोला, "मरवाओगे सब को।"

"अरे तो और कहाँ जाएँ?" चमन पटेल अपने चमकते सिर पर लुढ़कते हुए पसीने की बूँद पोंछकर, कुछ घबराई आवाज में बोले, "अब तो लगता है कि घर पर भी जासूसी लगा दी इन लोगों ने। यहाँ पर कम-से-कम अपने ही लोग हैं।"

"क्या स्थिति है?" जगह सँभालते हुए डबलू बोला।

"फिलहाल तो नाजुक है," शाहिद भाई टेबल के उस पार से बोले। चमन बाबू ने भी सिर हिलाकर शाहिद के इस अंदाजे को सराहा।

साल-दर-साल, कभी योजनाओं के नाम, तो कभी 'विकास कार्य' के नाम, चमन पटेल एवं साथी अफसर पूरे जिले का भार उठाते चले आ रहे थे। ये अलग बात है कि ये पूरा-का-पूरा भार हजार-हजार के कड़क नोटों का ही है। क्या सड़क और क्या पुल? साहब के टेबल से पास हुए सभी बिलों में घपला है। अब दिक्कत ये नहीं है कि जाँच में कहीं कोई धाँधली न सामने आ जाए। दिक्कत तो ये है कि कितनी? और कौन-कौन सी। चमन बाबू की दिक्कत अगर यहाँ खत्म मान भी ली जाए, तो दूसरी समस्या ये है कि अब कौन-कौन सा सनम साथ में डूबेगा।

"तो कोई प्रोजेक्ट अफसरों के हाथ तो नहीं आया?" हमने पूछा।

"ऊपर-ऊपर से तो सभी देख लिए हैं, अब कौन जाने किस फाइल में साहब की आँख फड़की थी?" शाहिद भाई बोले।

"मुझे लगता है कि सड़क वाले सारे प्रोजेक्ट ऑडिट में आ जाएँगे," चमन बाबू चिंतित मुद्रा में बोले।

"क्या लगता है?" डबलू ने सवाल किया, "कुछ ले-दे कर मामला नहीं निपटेगा?"

"सक्सेना साहब हैं कमेटी के हेड," पटेल बाबू बोले, "रिकॉर्ड तो क्लियर है उनका। मुझे नहीं लगता कि ऐसे बात बनेगी। और वैसे भी, अगर ऐसा कुछ होना होता तो उनकी तरफ से पहले दिन से ही इशारे होने लगते। कुछ अफसर खुद न भी खुल कर कह पाएँ तो अपने स्टाफ से

कहलवा देते हैं। यहाँ तो सब सून-सपाटा है। मानो लक्ष्मी से कोई मोह ही न हो।"

"तो स्टाफ से पता चल सकता है," प्रकाश बोलने लगा, "स्थिति कितनी गंभीर हैं? और मामले को दबा देने की कोई गुंजाइश है या नहीं?"

"सरकारी विभागों में अफसरों की जैसी भी बनती हो," हमने कहा, "पर उनके स्टाफ एक दूसरे से बराबर भाई-चारा निभाते हैं। क्यों शाहिद भाई, क्या कहते हो?"

शाहिद भाई की नजर हम पर आ रुकी और बाकी सब की शाहिद भाई पर। समझ सबको आ गया था कि हम क्या कहना चाह रहे थे।

"बात तो मैं कर सकता हूँ," शाहिद भाई बोले, "पर हवन करने के चक्कर में कहीं हाथ न जल जाए। कई बार स्टाफ के लोग अपने अफसर के कुछ ज्यादा ही सगे होते हैं।"

चमन बाबू और शाहिद की नज़र एक दूसरे पर पड़ी। चमन बाबू उसे देखते हुए गर्व से मुस्कुराए। क्या पता कभी 'शोले' में 'ठाकुर' 'रामलाल' को देखकर ऐसे मुस्कुराया होगा या नहीं?

शाहिद भाई आगे बोले, "कमेटी का स्टाफ क्या पता कैसा हैं? कहीं ऊपर चुगली कर दी तो? पता चला इधर मैं बात छेड़ दूँ और उधर सक्सेना साहब चिढ़ कर चमन बाबू की..."

"नहीं नहीं नहीं, कोई बात मत करना तुम," डबलू बीच में ही बोल पड़ा। "अब कोई लेन-देन नहीं होगा। चार दिन हो गए हैं, अगर कुछ होना होता तो हो जाता। हमको तो चमन बाबू का शनि भारी नजर आ रहा है। अब तो ये सोचो कि अगर सच में निपट गए तो क्या करेंगे?"

पुरानी हिंदी फिल्मों के चाहने वालों को दिल की गहराइयों तक पता है, 'जहर को जहर ही काटता है'। और क्या? हर तीसरी फिल्म में तो है ये डायलॉग। लिखने वाले लिख कर चले गए, हीरो के चाचा ने डायलॉग मार भी दिया, पर क्या सच में? शायद नहीं। यूँ तो 'लेन-देन' के हत्ते चढ़े पटेल बाबू 'ले-देकर' निकल जाने चाहिए थे, पर कहाँ? अब फिल्म की कहानी होती तो कहीं-न-कहीं से निकाल लाते। लेकिन नहीं, अब नसीब में अगर लगना ही लिखा है, तो लगने दो। अभी जिस संभावित दुर्गति से पटेल बाबू जूझ रहे थे, सच कहें तो वो उनका खुद का ही चुना हुआ था। अब चादर के बाहर पैर फैलाओगे तो ठंड तो लगेगी ही। और ऐसा नहीं है कि इन सब में हमारी कोई भागीदारी नहीं है। है! पूरी-पूरी भागीदारी है। पर क्या करें? हम न करते तो कोई और करता।

कुछ आधे-एक घंटे इसी तरह खुद के फिजूल सुझाव दूसरों को सुनाते हुए, और दूसरों के फिजूल सुझाव सिरे से नकारते हुए निकल गए। हो सकता है कि हम सब उस सवाल का जवाब ढूँढ़ने की कोशिश कर रहे थे, जो हमसे किसी ने पूछा ही नहीं था। या अगर पूछा था, तो उसका जवाब पहले से ही तय था।

चमन बाबू बेचारे, हैं बड़े सज्जन आदमी। हमको तो उनके अंदर लक्ष्मी-लोभ के अलावा और कोई अवगुण नजर ही नहीं आता। हाँ कभी-कभी जरूरत से ज्यादा बोल देते हैं, पर इंसान अच्छे हैं। दिल काफी छोटा है उनका, पर मुस्कुराते बड़ा अच्छा हैं। अब सरकार न बदली होती, तो सब कुछ सही था। नई सरकार के आने के बाद, कुछ एक्शन तो दिखाना पड़ेगा ना। सरकारी काम-काज भी बड़े अलग ढंग से होते हैं। डिपार्टमेंट की सफाई के नाम पर, बीच-बीच में कोई-न-कोई साफ होते

ही रहता है। और ऐसा नहीं है कि कोई खुद दूध का धुला हुआ है। चपरासी से लेकर बड़े-बड़े अफसर तक, सब डकार मार रहे हैं। खाया भी कम थोड़ी ना है। मजाल किसी ने भी कभी कोई फाइल बिना 'हरे रंग' के दर्शन किए आगे बढ़ाई हो। अरे, हमने तो सुना है कि अपशगुन मानते हैं।

सबने किया है भइया। सब आगे भी करेंगे। सौ में से एक चमन पटेल की बलि भी चढ़ाई जाएगी, पर ये परंपरा चलती रहेगी। सरकारें आएँगी और जाएँगी। अरे कितनी तो आकर चली गई, बस ऐसे ही। और कुछ नहीं बदलेगा।

अंततः इस आपातकालीन मीटिंग के दो नतीजे निकले; पहला, चाय ठंडी होने से पहले पी लेनी चाहिए, और दूसरा, चमन बाबू के 'शनि' को कोई 'मंगल' नहीं बचा सकता। या ये कह लीजिए कि निपटना तय था। सवाल ये था कि अब साथ में कौन-कौन निपटेगा?

अभी जैसा माहौल बन गया है, बस यहीं पर हिंदी फिल्मों में इंटरवल होता है। हम सोच रहे हैं कि हम भी गाड़ी यहीं रोक लें।

तो मिलते हैं फिर, इंटरवल के बाद।

8. क्षेत्रफल

अब बीती शाम गोडाउन में हुए मैसेज-मैसेज घटनाक्रम के बाद, हमारे वादे के मुताबिक आज शाम हमको पिंकी जी से मिलना था। हमारा मानना है कि हम सभी को अपने जीवन के सारे पहलू अलग-अलग डिब्बे में रखने चाहिए। व्यक्तिगत जीवन, दोस्ती, परिवार, धंधा, और भी न जाने कितने हिस्से जो कम पढ़े-लिखे होने के कारण हम सोच भी नहीं पा रहे हैं, ये सब अलग-अलग हैं। किसी एक की सामग्री दूसरे से नहीं मिलनी चाहिए। माना कि ये सभी चीजें एक-दूसरे से कहीं-न-कहीं जुड़ी हुई हैं। पर एक सच ये भी है कि इन सब से अगर अलग-अलग न निपटा गया तो जीवन के एक पहलू की समस्या दूसरे पहलू को दूभर बना देगी। अब खिचड़ी किसको पसंद है? इसलिए इन डिब्बों में लीकेज का भी खास खयाल रखा जाना चाहिए।
हम ये तो नहीं कह सकते कि हमको ओखली में श्री चमन पटेल जी का सुंदर मुँह चले जाने का कोई गम न था। दिन में हुई सभी बातें हमारे दिमाग में थीं, पर पिंकी जी से मिलने का उत्साह, जिस पर कृपया कोई टिप्पणी न करे, हम में कोई कम नहीं था।

गाँव-कस्बे की एक खासियत होती है। यहाँ हर कोई हर किसी को जानता है। परिणाम स्वरुप किसी मुद्दे के व्यक्तिगत होने का दायरा काफी हद तक बढ़ जाता है। फर्ज के लिए, हम जानते हैं कि फूलन काका के तीसरे बेटे हीरा को बवासीर है, गगन जब नींद में चलता है तो भरी रात किसी का भी दरवाजा खटखटाने लगता है और पंडिताइन अक्सर पंडित जी को बना के पीटती हैं। हैं तो और भी कई ऐसी बातें जो हम कह सकते हैं, माना मजा आ रहा है, पर कोई किताब थोड़ी लिखनी है? मुद्दा तो ये है कि उस शाम हमको पिंकी जी से मिलना था। और इससे पहले कि हम गाँव की गलियों में उनके साथ निकलते, सबको पता चल गया था कि हम आने वाले हैं।

एक तो जगह छोटी, ऊपर से हम वैसे ही फेमस। बहुत दिक्कत है जीवन में, अब क्या-क्या बताएँ?

जिस समस्या का समाधान संभव हो, वो समस्या, समस्या नहीं होती। वो अगर कुछ है तो सिर्फ एक नाकामी। जिस संदर्भ में हम ये बात कह रहे हैं, वो ये है कि शाम होते-होते पूरे गाँव में ढिंढोरा पिट गया था कि हम पिंकी जी को लेकर भ्रमण पर निकलेंगे। ढिंढोरे तो खैर और भी बहुत पिटे थे, पर काम का, और कुछ हद तक शालीन, यही है।

कसम से गिन के तीन ही तो जगह हैं यहाँ, जहाँ हम और पिंकी जी एक साथ हो सकते हैं। या तो बस अड्डे की चौपाटी चले जाओ, या फिर शिव मंदिर, या नर्मदा घाट। हम ये नहीं कह रहे हैं कि

यहाँ के लोगों की सोच संकुचित है। बात बस इतनी सी है कि इस जगह की सोच, फिलहाल वक्त से थोड़ी पीछे चल रही है। देखा जाए तो हमारा ये कहना पूरी तरह से तर्कसंगत नहीं है। अब कहीं लिखा तो है नहीं कि 'वक्त के साथ चलना' क्या होता है? तो ऐसे में अब कौन जाने कौन पीछे है, कौन आगे, कौन चल रहा है और कौन रुका हुआ है? हाँ, हम ये जरूर कह सकते हैं कि अभी हमारे गाँव के कण-कण में, किसी फिल्म में बस यूँ ही चेप दिया गया डायलॉग, 'एक लड़का और लड़की कभी दोस्त नहीं हो सकते,' एक साधना, अभ्यास और प्रथा के रूप में समाया हुआ है।

और ऐसा नहीं है कि बदलाव नहीं हो रहा है। हो रहा है, पर धीरे-धीरे।

अपने सभी सलाहकारों से राय लेने के बाद हमने तय किया था कि हम पिंकी जी को आज नर्मदा घाट ले जाएँगे। शाम का वक्त, मद्धम होती रोशनी और हल्की-हल्की सी बहती नदी... पिंकी जी की पर्सनालिटी को सूट तो नहीं करती, पर हमारे जीवन में चल रहे कोलाहल में हमको क्षणिक आराम देने में पूरी तरह सक्षम थी।

"क्या बात है, यहाँ लेट होने का रिवाज नहीं है क्या?" पिंकी जी ने हमको देखते ही कहा।

हम उनको लेने उनके घर पहुँचे थे। इस कलयुग की चाहे जो भी खामियाँ हों, हम ये जरूर कह सकते हैं कि मोबाइल फोन उनमें से एक नहीं है। अब ये न होता तो कहाँ हम उनको बता पाते कि हम आ रहे हैं? कहाँ वो पहले से ही तैयार होतीं? और कहाँ दरवाजे पर हमारा इंतजार हो रहा होता? उनके ठीक सामने लाकर हमने अपनी बुलेट को आराम दिया। माथे पर बिंदी, कानों में बाली, बाल खुले हुए, और काली धारियों वाले गुलाबी सूट में मोहतर्मा निखर तो रही थीं। मानो एक तरफ आहिस्ते से दिन ढल रहा हो, और यहाँ चाँद निकलने को बेताब खड़ा है। हमारी नजर तो उनके बालों के उस लट पर अटक गई थी, जो उनकी आँखों के किनारे से होते हुए गालों तक जाती थी। अल्हड़ हवा में कभी वो लट होटों तक पहुँच जाए तो फिर ख़ुदा ही बचाए उस आफत से।

"हम लेट होने लगे तो देश के ट्रेन क्या करेंगे?" हमने मुस्कुराकर जवाब दिया।

हमने कोई मजाक तो नहीं किया था, पर हमको पिंकी जी का खिलखिला कर हँसना अच्छा लगा।

जानकारी के लिए बता दें कि ये भारतीय रेलवे पर कोई व्यंग्य नहीं था। व्यंग्य में छोटी दिक्कतों को बढ़ा-चढ़ा कर बताया जाता है। बढ़ी-चढ़ी बातों को छोटी बता कर नहीं।

"वैसे हम जा कहाँ रहे हैं?"

"अभी से सवाल?" हमने उनकी बात काटते हुए कहा। "हम ये तो नहीं कह सकते कि आपको जगह पसंद आएगी। क्या पता आए-न-आए? पर ये शाम जरूर अच्छी रहेगी। हमारी गारंटी।"

"लो फिर! शुक्ला जी, कर लिया तुम पर भरोसा," कहते हुए पिंकी जी हमारी गाड़ी पर बैठ गई और यात्रा हो गई शुरू।

मानसिकता और विचारधारा एक धारणा है जो एक ही जगह के लोगों में अलग-अलग समय पर अलग-अलग हो सकती है। ये समय-समय पर बदलती तो रहती है, पर उस बदलाव का कोई

निश्चित वक्त नहीं होता। यहाँ तक की ये धारणा, एक ही जगह के अलग-अलग तबके के लोगों में, अलग-अलग हो सकती है।

कहना हम ये चाहते हैं कि हमारा उस लड़की के साथ घूमना-फिरना, जिसने हाल ही में हमारा रिश्ता ठुकराया था, नीम के नीचे बैठे चाचाओं में, कुँए में पानी भरने आई बुआओं में और पान ठेलों में होने वाली चर्चाओं में काफी निंदनीय विषय बन गया था।

हालाँकि, गाँव में हमारे खिलाफ उमड़ रहे विरोधाभास के बीच अच्छी बात ये रही कि इन चर्चाओं का हम पर कोई फरक नहीं पड़ा। विशेषज्ञों का मानना है कि हम ढीठ हो गए हैं। पर हमको क्या?

सूरज अब ढल जाने को तैयार था। नर्मदा घाट पर भीड़-भाड़ के अलावा हम भी पहुँच चुके थे, पिंकी जी के साथ। मंदिर से होते हुए, सीढ़ियाँ चढ़-उतर कर जन सैलाब के बीच हमारा आगमन हो गया था। वैसे इस भीड़-भाड़ में अब हमारा पिंकी जी के साथ होना हमको उतना सचेत नहीं कर रहा था, जितना गाँव की सड़कों के बीच उनको बाइक पर बैठाते वक्त कर रहा था। इसका एक कारण ये हो सकता है कि घाट पर होने वाली भीड़ अक्सर बाहर से आने वाले पर्यटकों की होती है, सो इतने फेमस होने के बावजूद वहाँ हमको कम लोग ही पहचान पा रहे थे। दूसरा कारण हो सकता है 'समय'। जब से हमने पिंकी जी को पहली बार देखा था, तब से गिनें तो अब तक काफी समय बीत चुका था हमको उनके साथ। और समय के साथ चीजें तो आसान हो ही जाती हैं। तीसरा ये हो सकता है कि क्या पता विशेषज्ञों की राय सही हो? क्या पता हम सच में ढीठ हो गए हों? कौन जाने?

सैलानियों द्वारा फैलाए गए कचरे को अगर एक पल के लिए नजरअंदाज कर दिया जाए, तो घाट का दृश्य काफी मनमोहक था। नर्मदा घाट पर ढलती शाम, मद्धम सी बहती हवा और जन समूह के शोर का धीरे-धीरे, वक्त के साथ, मद्धम हो जाना। ये किसी कहानी के उस हिस्से जैसा था, जो तुम अपने आप में ही कहीं रख लेना चाहते हो। इतना प्यारा कि उसे भूल जाने का खयाल ही नाजायज लगने लगे। और ऐसे में अगर 'साथ' अच्छा हो, तो क्या बुरा और क्या भला?

जितनी बातें हमने लिख दी, अम्मा कसम उतनी तो हम सोच भी नहीं पाए थे कि एकाएक पिंकी जी ने हमारा हाथ खींचा। जब तक हम होश में आए, पता लगा कि हम घाट में दिख रही आखरी सीढ़ी पर खड़े हैं। मोहतर्मा का आग्रह था कि कुछ देर यहीं बैठा जाए।

"पक्का?" हमने फिर पूछा।

"कोई दिक्कत है क्या?" जवाब में पिंकी जी का सवाल आया, "कि यकीन नहीं हो रहा?"

"हमको अंदाजा नहीं था कि आपको ये जगह पसंद आएगी। हमने सुना है कि दिल्ली से पढ़कर आने वालों को, अक्सर ये आनंद, आनंदित नहीं करते।"

"यार इतनी हिंदी तो हमारे पिता जी से भी ना हो पाएगी। लगता है कल से डिक्शनरी लेकर बैठना पड़ेगा तुम्हारे साथ। वैसे ऐसा किसने कह दिया तुमसे?"

"किसी ने नहीं, बस लगा हमको।"

इतना कह कर हम उनके पास बैठ गए।

प्रकृति इंसान के परे है। हम ये सोच कर जी रहे हैं कि हम उसे अपने हिसाब से ढाल रहे हैं, उसे अपने हिसाब से इस्तेमाल कर रहे हैं। पर ये नहीं सोचते कि प्रकृति हमको बदलने की कितनी क्षमता रखती है? कितना हर पल बदलती रहती है? हमने देखा है डकैतों को पहाड़ों में महात्मा बनते हुए। हमने देखा है हत्यारों को गंगा जी में अघोरी बनते हुए। हमने देखा है 'पूरी दुनिया' चाहने वालों को दुनिया छोड़ते हुए। असल में हम प्रकृति को उतना ही देख-समझ पाए हैं, जितना वो चाहती है कि हम समझें। अंत में हमारे अंदर हमारा उतना ही हिस्सा बचता है, जितना प्रकृति का दिया हुआ है।

"बहते पानी की बात ही कुछ और है," एक सुखद विराम के बाद पिंकी जी ने कहा।

पर अब तक हम जाने कहीं 'खो' से गए थे।

बीते पंद्रह मिनट अठारह सेकंड में हमको इतना तो समझ आ गया था कि आज बात कुछ अलग है। कुछ बदलाव थे हम में जो हम महसूस करने लगे थे। जैसे, पिंकी जी से बात करने में आज हम हिचकिचा नहीं रहे थे। उनकी छोटी-छोटी बातें हमारे जहन में घर कर रही थीं। हम देख पा रहे थे उनको मुस्कुराते हुए, हँसते हुए, खिलखिलाते हुए। हम सुन रहे थे वो भी, जो शायद कभी किसी ने कहा ही नहीं।

"तैरना आता है तुमको?" पिंकी जी ने फिर एक सवाल किया। अभी तो हम पिछली बात पर अपनी प्रतिक्रिया भी नहीं दे पाए थे और मैडम का नया सवाल हाजिर था।

ऐसा लग रहा था कि वक्त के साथ होकर भी हम वक्त के पीछे-पीछे चल रहे हों। जैसे हम सिर्फ सवाल सुनना चाहते हों, बिना कोई जवाब दिए।

इस बार भी इससे पहले कि हम कोई जवाब देते, उन्होंने खुद ही बताना शुरू किया, "हमको तो नहीं आता। बचपन में एक बार पापा हमको स्विमिंग के लिए लेकर गए थे। पूरे एक दिन की ट्रेनिंग है हमारे पास। हम तो डूबते-डूबते बचे थे उस दिन। दो मिनट को पापा ने उधर क्या देखा, इधर हम ढेर। अगले दिन कान पकड़ लिया था उनने। और दादी ने जो गालियाँ दी थी पापा को, कसम से आज भी याद हैं।"

यूँ तो हमारी कहानी में किरदारों की प्लॉटिंग के अनुसार, बीच-बीच में प्रयोग होने वाले अंग्रेजी के शब्द हमको समझ नहीं आने चाहिए थे। पर एक सच ये भी है, कि अगर तब वो कुछ न कहतीं, तो भी हम जान लेते कि उन्होंने क्या नहीं कहा। फिर अंग्रेजी तो हमारा पैशन है।

एक पते की बात बताएँ? कभी किसी की फालतू बातें सुन कर भी दिल को सुकून आए, तो अट्ठासी प्रतिशत चांस है कि आपको इश्क हो गया है। हम चाहते तो थे कि हम किसी तरह बाकी बचे बारह प्रतिशत में डटे रहें, पर एक-एक बीतते पल के साथ, उस ओर टिक पाना हमारे लिए और मुश्किल होता जा रहा था। हम सब कुछ सुन रहे थे। बड़े ध्यान से। ये भी खयाल आ रहा था कि कोई किसी एक इंसान के लिए इतना कैसे बदल सकता है? ऐसा भी होता है क्या कि किसी के खयालों से खुद के खयालों को मैच करने के लिए, कोई अपनी सोच से ही बगावत कर जाए?

कि सही-गलत सब एक सा लगने लगे। क्या किसी के लिए सिर्फ वो ही सच हो सकता है जो उसको किसी और की आँखों में नजर आता हैं? क्या कोई किसी और के लिए, खुद को खो सकता हैं?

जवाब है, 'नहीं'।

सब फालतू की बातें हैं।

हाँ! हम ये जरूर मानते हैं कि साथ समय बिताने से दो लोगों के बीच एक अपनापन आने लगता है। पर इसके ऊपर की 'शिद्दत' को हम सिरे से खारिज करते हैं।

काफी वक्त बीत चुका था। हमको अंदाजा भी था। पर हमने यूँ ही ‘शाम’ को ‘रात’ होने दिया। आस-पास लोगों की चहल-पहल न के बराबर हो गई थी और हल्के-हल्के सन्नाटे में झींगुरों की आवाज सुनाई पड़ने लगी थी। नदी का पानी आधी सीढ़ी ऊपर चढ़कर, हमारे पैरों को भिगोने लगा था। समझ हम दोनों को आ रहा था कि अब जाने का वक्त हो गया है।

"अब चलना चाहिए," हमने कहा।

'आज जाने की जिद ना करो' या कुछ नहीं तो 'अभी ना जाओ छोड़ कर' जैसे किसी जवाब का हम इंतजार कर रहे थे।

"हाँ! चलते हैं," सामने से जवाब आया।

पिक्चर खत्म।

वैसे अभी तक के वार्तालाप के बाद पिंकी जी को लेकर हमारा पर्सपेक्टिव पूरा बदल गया था।

हाँ, पर्सपेक्टिव ही लिखा है वो, अर्थात दृष्टिकोण। डिक्शनरी लेकर घूमते हैं हम आजकल।

हर व्यक्ति हर किसी पर अपना अलग प्रभाव छोड़ता है। मुलाकात भले एक पल की ही हो, पर जब भी कोई किसी से मिलता है, वो सामने वाले के व्यक्तित्व का एक हिस्सा अपने पास रख लेता है और अपने व्यक्तित्व का एक हिस्सा उसे दे देता है। मजे की बात तो ये है कि किसी को कुछ पता भी नहीं चलता। अब जब हमने पिंकी जी को करीब से जान लिया था, हमारे मन में उनके लिए रेस्पेक्ट और भी बढ़ गया था। अब हम उनकी सोच को समझ पा रहे थे। हम देख पा रहे थे उनके व्यक्तित्व के उस हिस्से को, जो हम में ही कहीं छूट गया था। कोई किसी के खयालों के जितना नजदीक जा सकता है, हम शायद जा चुके थे। और इसके बाद कुछ ऐसा हुआ, जिसने हमारे विचारों के मानचित्र को ही बदल कर रख दिया। बस ये समझ लीजिए कि... निर्णायक। इतना निर्णायक, कि इसी घटना के बाद हमने तय कर लिया था कि ब्याह तो पिंकी जी से ही करना है, चाहे जो हो जाए।

आखरी के चार शब्द - 'चाहे जो हो जाए', सिर्फ पारंपरिकता को ध्यान में रख कर उपयोग किए गए हैं। इनका वास्तविकता से कोई सरोकार नहीं है।

जिस घटना की हम बात कर रहे हैं, वो इतनी निर्णायक है कि इसको लोगों को बताने के लिए

हम फीस चार्ज करते हैं।

हाँ, फिर लोग उठ कर जाने लगते हैं तो फ्री में भी बता देते हैं।

दरअसल हुआ कुछ यूँ, कि जब हम पार्किंग से बुलेट निकाल रहे थे, किसी ने पीछे से हमारी गाड़ी को ठोकर मार दी। हमने पलट कर देखा तो था कोई, बाइक में, लगभग आठ साल के लड़के के साथ। चार सेकंड तो कुछ नहीं, पर जैसे ही हमारी नजर टूटे हुए इंडिकेटर पर पड़ी, हमारा दिमाग भनक गया।

स्टैंड टिका कर हम उतरे थे कि अब दो-तीन हाथ तो दे ही देंगे। यूँ कह लो कि हमने हाथ उठा ही दिया था कि पीछे से पिंकी जी आ गई और उन्होंने हमको रोक लिया।

"आप बीच में मत आइए," हमने कहा।

"तुम कुछ नहीं करोगे," उन्होंने पूरे हक के साथ हमको फिर रोका। "और आप जाइए..." उन्होंने उस बाइक वाले से कहा।

हम थोड़े गुस्से में जरूर थे, पर नशे में नहीं। उनकी बात तो मान ली, पर एक टीस दिल में अब भी बाकी थी। जान से भी ज्यादा प्यारी थी हमारी बुलेट हमको। पर अब किसको क्या समझाते?

"उसको जाने क्यों दिया?" हम अब भी लगभग बौखलाए से बोल रहे थे, "अभी खबर लेते उसकी।"

"तुमने देखा नहीं," पिंकी जी ने समझाते हुए कहा, "उसके साथ उसका बेटा भी था।"

उन्होंने ये बात ऐसे कही, जैसे दो नंबर के सवाल में चार पन्ने का जवाब लिख दिया हो।

"तो क्या हुआ?"

"क्या हुआ मतलब?" उन्होंने समझाना शुरू किया, "बच्चों के लिए उनके पिता उनके हीरो होते हैं। वो उनको ही देख कर सीखते हैं, उनकी रेस्पेक्ट करते हैं, उनको फॉलो करते हैं। वो देखते हैं उनको मेहनत करते, खुद की खुशियों को उनके लिए सैक्रिफाइस करते। एक पिता दुनिया के लिए चाहे कुछ भी हो, पर अपने बच्चे के लिए एक सोच होता है, एक सम्मान, एक आदर्श होता है।"

उन्होंने थोड़ा रुक कर कहा, "तुम मानो या ना मानो, इस एहसास का होना, 'बचपना' होने के लिए जरूरी है। ऐसे में अगर तुम उस बच्चे के सामने उसके पिता को दो-चार हाथ लगा देते, तो तुम तो खुश हो जाते, शायद चार-छह दिन यही सपने देखते, पर इस बीच उस बच्चे से उसका हीरो छिन जाता।"

*** *** ***

बस। पिंकी जी के लिए वही इज्जत हमारे मन में भी अचानक जागी थी जो सबके मन में अभी-अभी आई है। हमको मिट्टी के पीतल होने का अंदाजा तो था, पर वो तो सोना निकली। हाँ, पता है;

ज्यादा हो रहा है। पर ये बात भी सच है कि इस घटनाक्रम से पहले, इस दुनिया में हम सिर्फ दो लोगों की दिल से इज्जत करते थे। एक हमारी अम्मा और दूसरे हम खुद। अब पिंकी जी भी इस लिस्ट में शामिल हो गई थीं।

तीसरे नंबर पर।

हर रात नींद न आने के अलग-अलग कारण होते हैं। हम इस बात के विस्तार में नहीं जा रहे हैं, क्योंकि मैटर बड़ा है। और अगर इस पर हम ज्ञान देने लगे, तो हमको रोकेगा कौन? बस इतना कह कर विराम लेंगे कि उस रात हमको नींद न आने का कारण थी एक टीस, जो रह-रह कर दिल को चुभ रही थी।

सबको याद हो तो महीनों पहले जब हम पहली बार पिंकी जी से मिले थे, तब उन्होंने हमसे ब्याह करने से मना कर दिया था। नहीं याद आ रहा हो तो भी कोई बात नहीं। वैसे भी यू.पी.एस.सी. में ये नहीं पूछते। हाँ, तो टीस ये थी कि इस बात का उस दिन जितना फरक नहीं पड़ रहा था, उससे कहीं ज्यादा, 'आज' पड़ रहा था।

नहीं, प्रोसेसर स्लो नहीं है हमारा।

और ना ही हम 2जी यूज करते हैं।

आज हमको ये एहसास हो रहा था कि शर्मा निवास की छत पर हमसे असल में क्या छूट गया था? शायद तब ही हम पिंकी जी को सही से जान पाए थे। शायद यही वो पल था, जब हमारी किस्मत में इश्क होना लिखा था। हाँ शायद।

"बीती शाम से बन गया हूँ मुरीद ख़ुदा की कारीगरी का, बीती शाम को ही तो असल में नजर आए थे तुम।"

बोलो वाह!

9. आयतन

सादा जीवन और उच्च विचार। यूँ देखें तो इस लाइन में उस जीवन की पूरी विवरणी समा जाती है जो हम चाहते हैं कि हमारी हो। पर 'चाहने' और 'होने' के बीच की दूरी का दूसरा नाम ही तो जीवन है। इधर 'सादा जीवन' तेज-पत्ता हुआ जा रहा था, उधर 'उच्च विचार' के नाम पर हमारे जहन में 'जो बोलता है वही होता है' ही बस बचा था।
वैसे हमारे मन में जीवन के प्रति अचानक उमड़े इस आक्रोश का एक कारण था। हुआ यूँ कि उस रोज जब हम काम में व्यस्त ही हुए थे, दरवाजे पर डाकिया आ गया।

अगर आपके जहन में बड़ी जोर से, खाकी कपड़े पहने एक बुजुर्ग व्यक्ति आ रहा है, जिसके चश्मे का फ्रेम किनारे से हल्का सा टूटा हुआ है और जिसने अपने दाहिने कंधे पर एक खाकी झोला लटका रखा है, तो जनाब या तो आप वक्त से थोड़ा पीछे चल रहे हैं, या फिर पुरानी फिल्मों का शौक रखते हैं।

राईट, अंग्रेजी के आशिकों, दाहिने मतलब राईट।

आजकल के डाकिये तो बाकायदा बाइक से आते हैं। खत देकर बराबर दस्तखत भी करवाते हैं। इस दुनिया में ईंधन के बाद जो सबसे तेजी से खत्म हो रहा है, वो है 'भरोसा'। अब लोग खुद पर ही नहीं करते हैं, दूसरों पर क्या करेंगे?

बहरहाल, दुःख की बात ये थी कि श्री चमन पटेल निपट चुके थे। वो भी लम्बे से।

अगर किसी के मन में ये आ रहा है कि चमन बाबू ने हमको ये बात खत लिखकर बताया होगा, तो धन्य है आपकी सोच। कोई लुगाई थोड़ी हैं वो हमारी कि इतना रोमांटिक चले गए? हाँ! आपके लिए हमारे पास एक बुरी खबर जरूर है। वो फिल्मों का शौक नहीं था, आप वक्त से सचमुच बहुत पीछे चल रहे हैं।

असल में जो अब हमारे हाथ में था, वो था एक बुलावा।

"बबलू भइया, सब ठीक तो है?" डाकिये ने भी हमारे चेहरे का रंग उड़ते देख लिया था।

"सब बता दें तुमको?" हमने उसे चिढ़ाते हुए कहा। अब चिढ़ाना-विढ़ाना तो ठीक है, पर ये असल कोशिश थी बेचैनी को छुपा कर बाहर से मुस्कुराने की। "निकलो चुप-चाप यहाँ से, और रास्ते में

डबलू को आवाज लगा देना। बोल देना हम बुला रहे हैं।"

"हओ! चलते हैं," कहकर वो उड़न-छू हो गया।

*** *** ***

जैसा की हमने अभी-अभी कहा था, 'चाहने' और 'होने' के बीच की दूरी का दूसरा नाम ही जीवन है। हर किसी का सफर इसी दूरी में कहीं शुरू होकर ख़त्म हो जाता है, पर वो सफर कभी पूरा नहीं होता। हम तो चाहते हैं कि हम रोज सुबह सूरज से पहले उठें। पर होता है क्या? हम तो चाहते हैं कि हलवा-पूड़ी कम कर दें तो दो-चार किलो वजन भी कम हो जाए। पर होता है क्या? हम तो ये भी चाहते थे कि डाकिया जाते-जाते डबलू को आवाज लगा दे। पर लगाया क्या?

"हाँ!" डबलू बोला, "लगाया था उसने आवाज।"

"तो मेरे चमन बहार, जब सुन लिए कि हमने बुलाया है, तो घोड़ी का इंतजार कर रहे थे? आए काहे नहीं?"

व्यंग्य देख रहे हो?

"हमको लगा मजाक कर रहा है," डबलू बोला।

अगले बारह सेकंड की खामोशी में हम ये सोच रहे थे कि किसको गाली दें। डाकिये को या डबलू को। पर फिर लगा कि गाली देने में कौन सा टैक्स लगता है? तो हमने दोनों को दे दिया।

बहरहाल, इस समय हम बैठे थे डबलू की हवेली में। नहीं, 'हवेली' शब्द में किसी भी प्रकार से अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग नहीं किया गया है। अब पांडे परिवार बरसों से सरपंचों का घर रहा है।

इतना तो ईमानदारी से बनता है।

अरे हवेली क्या, पूरी-की-पूरी लाल कोठी है वो। बीचों-बीच खुला आँगन। चारों ओर चार मंजिला दीवारें, बीच में तुलसी का पेड़ और पूरे घर में अगरबत्ती की भीनी-भीनी खुशबू। डबलू को छोड़कर, घर की हर एक चीज व्यवस्थित है।

"अगले हफ्ते, शनिवार की तारीख है," पुरानी कारीगरी की हुई लकड़ी की कुर्सी पर बैठकर टिकते हुए, प्रकाश ने संजीदा लहजे में कहा। भाई के भार पर जब कुर्सी की उम्र जवाब दे गई तो एक 'च्यों...' की आवाज आई। ऐसा लगा कि चौंक कर कह रही है, 'शनिवार?' जैसे भरोसा ही न हुआ हो।

प्रकाश हल्का सा आगे हुआ तो फिर 'च... चचर.. च्यों' की आवाज आई। कुर्सियों की भाषा के कोई एक्सपर्ट तो नहीं हैं हम, लेकिन इस बार लगा जैसे कोई सुझाव देना चाहती है। 'इससे अच्छा तो सीधे सोमवार को ही रख लेते'। पर उस बेचारी की जब किसी ने नब्बे साल में नहीं सुनी, तो अब कौन सुनता?

"शो कॉज नोटिस है ये," प्रकाश समझाने लगा। पूछ रहे हैं कि हर बार हमारे टेंडर, दूसरे बेहतर वाले से बस एक रुपए ही कम क्यों है?"

"इतनी सी बात के लिए यहाँ तक आ गए?" डबलू को बात गले नहीं उतरी। "सबको पता तो है। अरे बूँदी भी बता देगा इतना तो।"

"हाँ! तो अच्छा है कि उस से नहीं पूछा। सिर्फ इतना ही नहीं, कोर्ट में कार्यवाही के दौरान हम में से किसी की उपस्थिति भी माँगी है," प्रकाश बोला।

"बढ़िया है। खाली रहेंगे हम अगले हफ्ते," डबलू उत्साहित होकर बोला। "इस शनिवार होता तो दिक्कत हो जाता। तुम्हारी भौजाई को फिल्म दिखाने ले जा रहे हैं।"

"बेटा प्रेम पत्र नहीं है ये कि लगे उछलने," हमने कहा।

"हाँ मालूम है। तुम्हारे घर का पता था इसमें," डबलू बोला, "ये और कुछ भी हो सकता था, पर प्रेम पत्र नहीं।"

डबलू और प्रकाश हँसने लगे। कुर्सी से कोई आवाज तो नहीं आई, पर हमने मान लिया कि वो भी खिखिया रही है।

*** *** ***

"गुप्ता जी कहाँ बैठते हैं," कोर्ट परिसर में दाखिल होते ही पहले जीव से हमने पूछा।

सीनियर एडवोकेट गुप्ता जी प्रकाश के वो रिश्तेदार थे, जो इतने दूर के थे कि कभी पास न आ सके। दूरी का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उनसे मिलने के इतने अच्छे बहाने पर भी भाई बहाना दे गया। और बहाना भी क्या? 'किसी रिश्तेदार से मिलने जाना है'।

खैर, मजेदार बात ये नहीं है। मजेदार तो वो इंसान था जिससे चार लाइन पहले हमने पूछा था कि गुप्ता जी कहाँ बैठते हैं।

कम उम्र और अगरबत्ती से बदन पर काला कोट देखकर समझ आ रहा था कि कोई नया-नया वकील है। साँवली सी सूरत पर सरसों के तेल से सने बाल, जिस सलीके के चिपके हुए थे, मजाल किसी झोंके की कि एक कतरा भी हिला सके। उसके अचंभित और विचारशील चेहरे को देखकर हम बस इतना ही अनुमान लगा पाए थे कि या तो उसको सवाल सुनाई नहीं दिया, या फिर समझ नहीं आया। हाँ, प्रोसेसर भी स्लो हो सकता है, पर हम कौन होते हैं जज करने वाले?

"हीरा शंकर गुप्ता... बनारस वाले... कहाँ बैठते हैं," डबलू ने दूसरे शब्दों में कहा। भाई की आवाज इस बार थोड़ी ऊँची थी।

"गुप्ता जी..." एक गुटका थूकने जितना विराम लेने के बाद उसने कहा, "ये पिलर गिनते जाइएगा।" थोड़ा अटपटा जरूर लगा पर हम सुन रहे थे, "आठवें के बाद मिल जाएँगे। और अगर नहीं मिले तो उलटी दिशा में चार पिलर वापस लौट आइएगा, मैं मिल जाऊँगा। अब वो मिलें, मैं

मिलूँ, भगवान मिलें, सब एक ही बात है। सवाल तो ये है कि मन्नत क्या माँगना है, और चढ़ावे में क्या लाए हैं? बाई-द-वे मैं राज। अरे नहीं! नहीं! वो नहीं। 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएँगे' में दूसरा था। बस लुक्स मिलते हैं, इसलिए कनफ्युजन हो जाता है। वैसे दिलवाले हम भी कम नहीं हैं।"

और इस लाइन के बाद भाई साहब ने दी एक टशन भरी स्माइल। मुख पर साढ़े तीन इंच दूर तक फैली खुशी के अलावा अगर कुछ और था, तो वो था अपार कॉन्फिडेंस। अपार मतलब- 'अ' के दो बार पार। अभी दो मिनट भी नहीं हुए थे उससे मिले, पर उसे चुप देखकर भी लग रहा था कि जैसे उसकी आँखें बोल रही हैं। और कुछ खास नहीं। वही फिजूल की बकैती जिसका कोई सिर-पैर न हो।

हम कुछ बोलने को तो हुए पर इससे पहले कि हमारा मुँह खुल पाता, उसने बगल की दीवार पर बाग ही बिखेर दिया। पच्च की आवाज आई और दीवार लाल।

पिछली बार सिर्फ पॉज लिया था, गुटका तो उसने असल में अब थूका था।

अगर आपको इतने में ही रोना आ गया तो लगे हाथों ये भी सुन लीजिए। आठ पिलर बाद हमको गुप्ता जी नहीं मिले।

कौन जाने वो कभी वहाँ पर मिलते भी या नहीं? पर हम लौट आए थे वापस चार पिलर पार, अपने राज के पास, अपनी जिंदगी जीने।

जब ये सोचकर निर्णय लेना संभव न हो कि कौन सा रास्ता बेहतर है, ये सोच लेना चाहिए कि कौन सा रास्ता कम खराब है। सही... गलत... अलग बात है, पर उस क्षण में, जब कुछ समझ नहीं आ रहा होता है, एक निष्कर्ष तो निकल ही जाता है।

काश इतना दिमाग हमने उस समय लगा लिया होता।

खैर...

हम उस दर्द को दोबारा सोचना भी नहीं चाहते जो हमको पूरा-का-पूरा 'चमन पटेल कांड' राज सर को समझाने में हुआ था।

कुछ जख्म हरे ही भूल जाओ तो बेहतर।

जानकारी के लिए बता दें, राज भाई साहब को ये 'सर' वाली इज्जत, कहानी के इस पड़ाव पर हम खुद नहीं दे रहे हैं। ये सम्मान तो उन्होंने अगले आधे घंटे में हमसे छीन लिया था। ये अपने आप में एक अलग कथा है। कभी इत्मीनान से बताएँगे।

"नोटिस कहाँ है?" वकील साहब ने पूछा।

डबलू ने जेब से खत निकालकर उनको पकड़ा दिया।

पूरे कागज पर नजर फेरने के बाद उन्होंने कहा,"अब देखिए ऐसा है कि चमन जी का बचना मुश्किल है। अगर आपको नोटिस आया है, इसका मतलब उनके खिलाफ पूरा केस पहले ही बन गया है। जहाँ तक है कि चमन बाबू के कार्यकाल में आए सभी कांट्रेक्टर और सब-कांट्रेक्टरों को

नोटिस गया होगा। और इनका कोई बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं है। ये तो बस केस और मजबूत करने के लिए दे रहे हैं। कहीं कोई आकर उनके खिलाफ गवाही दे-दे तो बढ़िया।"

"तो दिक्कत कहाँ है?" डबलू ने पूछा।

"अरे डबलू भइया, जिस कुर्सी पर आप अभी बैठे हैं, वहाँ तो आई हुई दिक्कत वापस चली जाती है। इस केस में तो फिर भी दिक्कत आते-आते रह गई।"

"तो क्या करना चाहिए अब?" हमने पूछा।

"एक ईमानदार नागरिक एवं सलाहकार होने के नाते मेरा कर्तव्य है कि मैं आपसे कहूँ, आपको कोर्ट में तय तारीख पर उपस्थित होना चाहिए, और सारी बातें सच-सच बता देनी चाहिए।"

"पर...?"

"पर न तो मैं बहुत ज्यादा ईमानदार हूँ, और ना ही कर्त्तव्यों के पालन में कुछ खास विश्वास रखता हूँ। मैं तो वो कहूँगा जिसमें आपका नुकसान न हो।"

"अबे तो कहो ना," डबलू बोला, "कब से कह रहे हो कि कहोगे! कहोगे! कहोगे! अरे कहते क्यों नहीं? अम्मा कसम इतना माहौल बना रहे हो जैसे कोई शायरी मारने वाले हो। 'इरशाद' बोलें क्या? कमाल आदमी हो यार।"

ये गुस्सा नहीं था। मतलब सुनने में गुस्सा जैसा लग जरूर रहा है, पर गुस्सा नहीं था।

"मेरी सलाह है कि आप चमन बाबू के खिलाफ कुछ भी न बोलें," बिलकुल शांत अंदाज में वकील साहब बोले, "कोर्ट में आप तो बस इतना कहिएगा कि आपको ऐसे किसी मामले की जानकारी नहीं है। थोड़ा झूठ ही सही, पर अगर खुद को बचाना है तो इतना करना पड़ेगा।"

"खुद को बचाना कैसे?" हमने पूछा।

"अगर आप ये कहते हैं कि चमन बाबू ने रिश्वत लिया था, तो इसका मतलब ये भी तो है कि आपने रिश्वत दिया था। और सिर्फ ये कहना कि उन्होंने माँगा था पर आपने देने से मना कर दिया, सही नहीं होगा। आखिर में काम भी तो आपको ही मिला। कैसे? कहानी जमेगी नहीं। और चमन जी ने ही अगर आपकी बात काट दी तो मामला बिगड़ जाएगा। वैसे भी इस बात का जवाब तो देना ही है कि आपके टेंडर दूसरे टेंडरों से सिर्फ एक रुपए ही कम क्यों थे? खैर वो तो एक संयोग मात्र बता सकते हैं। सबके बीच क्या मार्जिन था, वो भी देखना पड़ेगा। पर मुद्दा आसानी से निकल जाना चाहिए। हाँ! लेकिन सिर्फ तब, जब आप ये कहें कि आपको कुछ भी नहीं पता। आप तो चमन बाबू को ठीक से जानते तक नहीं। कम शब्दों में कहें तो उनकी फटी में आप अपना मत अड़ाइए।"

"और अगर सब सच कह दें तो?" हमने फिर पूछा। "ज्यादा-से-ज्यादा क्या हो जाएगा?"

हम तो बस ये जानना चाहते थे कि जिस रास्ते जाने से वकील साहब मना कर रहे थे, वहाँ असल में था क्या? हमारा नुकसान ही सही, पर कितना?

"तो ज्यादा-से-ज्यादा आपको हो सकती है सात साल की जेल।"

"और कम-से-कम?" डबलू बड़ी उम्मीद के साथ पूछा।

"कम-से-कम लगेगा 'फाइन'। खुद ही सब सच-सच बोल दो तो ज्यादा चांस फाइन लगने के ही हैं। पैसा भरो, आगे बढ़ो। लेकिन साथ में कंस्ट्रक्शन लाइसेंस भी जा सकता है। और जिस हिसाब से आपने कहानी और सब हेर-फेर बताए हैं, फाइन भी कोई छोटी रकम की नहीं होगी।"

"मतलब या तो चमन बाबू के खिलाफ जाकर सब सच-सच बता दें, और फाइन भी भर दें, या फिर ये झूठ कह कर किनारे से निकल लें कि हमको कुछ भी नहीं पता।"

"अब क्या सच और क्या झूठ?" वकील साहब बोले, "क्या सही और क्या गलत? सबकुछ बस नजरिए का खेल है। मैं तो मानता हूँ कि जो झूठ किसी की भलाई के लिए बोला जाए, वो झूठ, झूठ नहीं होता। और भलाई अगर अपनी खुद की हो, इससे बड़ा कोई सौभाग्य नहीं है। और ये तो अच्छा हुआ कि आपके खिलाफ कोई सबूत सामने नहीं आए। आप तो इस बात का शुक्र मनाइए कि खेल में आपका हिस्सा अभी भी आपके हाथ में ही है। वैसे अगर आप पर अब तक अलग से कोई केस फाइल नहीं हुआ है, तो कम ही चांस है कि आगे कुछ होगा, और अगर कभी कुछ हो भी जाए, तो कोई दिक्कत वाली बात नहीं है। मैं तो बैठा ही हूँ यहाँ। क्यों?"

"बिलकुल... बिलकुल," डबलू बोला।

*** *** ***

हाँ भाई! सच में। वो गुस्सा नहीं था।

10. त्रिकोणमिति

"हाँ कर लेंगे हम खुद ही कुछ," प्रकाश गुस्से में बोला।

"तो जाओ ना बे," डबलू दस प्रतिशत और ज्यादा गुस्से में बोला। "जो करना है, जहाँ करना है, जैसे करना है, कर लो। बस हमारे सामने मत आ जाना कभी, नहीं तो ऐसा निपटाएँगे कि निपट ही जाओगे।"

"हओ!" डबलू को अनदेखा, अनसुना... सब करते हुए प्रकाश बोला, "कौनो माधुरी दिक्षित नहीं हो कि मर रहे हैं आपको देखने के लिए। कर लो बँटवारा अब तो। हमसे भी ना हो पाएगा आगे से ऐसे काम। समझ नहीं आता सिर है कि नारियल। साला कुछ घुसता ही नहीं है इनके अंदर। अरे! तंग आ गए हैं यार हम। अब तो कतई ना हो पाएगा हमसे।"

हर बार की तरह अगर ये आखरी समोसे पर होने वाली लड़ाई होती तो सचमुच मजेदार होती। या कोई सपना जो सुबह खुली नींद के साथ गायब हो जाए। पर ये एक महाभारत था, डबलू और प्रकाश के बीच, साक्षात हमारे, जहाँ हम चाहते तो थे कि कृष्ण की भूमिका में आएँ, पर हम रह गए थे तो सिर्फ, धृतराष्ट्र बनकर।

नहीं, पन्ने मत पलटो, कुछ छूटा नहीं है। हमने शुरू ही बीच में से किया है। वो फिल्मों में करते हैं ना, जिसके बाद कहानी फ्लैश-बैक में चलती है। वैसा कुछ।

आधे घंटे पहले:

"बात हुई मामा से?" भरे दोपहर, कोर्ट से हमारे लौटने पर प्रकाश ने पूछा।

जिस जगह और स्थिति में हमसे ये सवाल पूछा गया था, माना जा सकता है कि प्रकाश की उत्सुकता किसी चरम पर ही रही होगी।

"अंदर आ जाएँ कि बाहर से ही बता दें तुमको सब?" गाड़ी टिकाते हुए, डबलू कुछ बिफरा-बिफरा सा बोला।

एक तो वैवाहिक जीवन, उस पर सुबह-सुबह एडवोकेट राज से मुलाकात। अब अगर डबलू का बिगड़ना तर्कहीन है, तो हम नहीं जानते तर्कसंगत क्या है?

"तो भइया बिगड़ काहे रहे हो?" प्रकाश इस कोशिश में था कि माहौल मनाली हो जाए, ठंडा!

इसलिए आगे बोला, "अंदर आकर बता दो, आराम से, पानी-वानी कुछ लाएँ?"

"अब तो जो हालत हो रही है, पानी से कुछ ना हो पाएगा," डबलू कुर्सी थोड़ा करीब खींचकर बैठते हुए बोला।

"वो तो फिर रात होने दो, लगाते हैं महफिल।"

"अब क्या महफिल लगाओगे?" हम बोले, "यहाँ तो शामियाना उजड़ने वाला है।"

"अब कुछ बोलो तो हमारी भी जानकारी बढ़े। कौन सा शामियाना? और क्या उजड़ने वाला है?" प्रकाश का धीरज अब खत्म होने की कगार पर था।

"बेटा धंधे में मंदी आने वाली है," हमने समझाना शुरू किया। "अच्छे दिन आकर चले गए। अब चमन बाबू तो जा रहे हैं जेल यात्रा पर। और उनके साथ ही बह जाएगा अपना लाखों का धंधा। वो तो शुक्र है काली माँ का कि हम सब भी घेरे में नहीं आ गए। नहीं तो जो सब हाथ से जाता वो तो ठीक, हाथ में हथकड़ी अलग से लगती। हाँ! लेकिन कोई-न-कोई तो आएगा उनकी जगह पर। पर कौन जाने कब? और-तो-और अगर समय से आ भी जाए, तो क्या पता लक्ष्मी को पूजेगा कि हनुमान को? प्राइवेट काम का तो पता ही है तुमको, एक तो मार्जिन इतना कम, ऊपर से समय की पाबंदी अलग। क्वालिटी का भूत अलग दिक्कत देता है।“

“कमबख्त चालू काम में लगे पैसे भी डूबत ही दिख रहे हैं,” हम आगे बोले, “एक तो वैसे ही इनसे चेक लेने में पसीना आ जाता है, अब विभाग पर जाँच की स्थिति में भगवान ही जाने क्या होगा। अब तो मुश्किल है कि कोई पेमेंट रिलीज हो जाए। साला लाखों का नुकसान बैठे-बिठाए ही हो गया।"

"एक मिनट! एक मिनट!" प्रकाश बीच में बोला, जैसे किसी नींद से जागा हो, "चमन बाबू वाली बात पर थोड़ा जोर दीजिए। क्या मतलब कि जेल जा रहे हैं?"

प्रकाश भाई को हर पहली चीज से एक अलग सा ही लगाव है। अक्सर अटक जाता है। पहला स्कूल, पहली किताब, पहला प्यार, पहला सेमेस्टर, पहली गाड़ी और वो सब जो समय के अभाव में हम नहीं कह रहे हैं। अब देखिए ना, हम कहाँ चमन बाबू से शुरू होकर, ‘लक्ष्मी-हनुमान’ करते, पेमेंट तक आ गए थे। पर अपना भाई अब भी अटका था हमारी पहली लाइन पर।

हाँ...! दूसरी मान लो, एक ही बात है।

"अब जोर क्या देना है?" डबलू थोड़ा जोर देकर बोला, "निपट गए, तो निपट गए। माना कलयुग है, पर कुछ लोगों को उनके कर्मों की सजा, मिल जाती है।"

"अब कलयुग हो चाहे जो," प्रकाश तनिक उत्तेजित-उत्तेजित सा हुआ बोला, "ऐसे कैसे निपट जाएँगे। अकेले। वो भी हमारे होते हुए। पाँच साल से साथ काम कर रहे हैं यार, अब दिक्कत आई है तो हम निकल लें साइड से? हमारा भी तो कुछ कर्त्तव्य बनता है?"

"ओ... कर्त्तव्य प्रेमी फूफा," डबलू अपने ही लहजे में बोला, "कौन सा कर्त्तव्य? काहे का कर्त्तव्य? किसी का कुछ नहीं बनता। कल तक कट रहा था तो बँट रहा था। सबको बराबर-बराबर। और

अलग से बता रहे हैं तुमको, तुम ज्यादा ‘साथ काम’ ‘साथ काम’ का ज्ञान ना निपोरो। पता चला साथ-साथ के चक्कर में साथ का मरण हो गया।"

"अब मरण हो तो हो। हम तो चमन बाबू के साथ ही खड़े होंगे।"

"अबे! अकल के धनी,” तप्त वार्तालाप के बीच में आकर हमने प्रकाश से कहा, “पैदल चलते हो क्या तुम? मैटर तो समझ लो पहले, बाद में उछलना जितना उछलना हो। कहाँ साथ खड़े हो जाओगे? कुछ पता तो कर लो पहले।"

"वही तो पूछ रहे हैं कब से, तो पता नहीं डबलू भइया क्या ज्ञान झाड़ रहे हैं?"

"बेटा छत से कूद जाना, पर हमसे मार मत खाना। हम बता रहे हैं जीवन भर याद कर-कर के रोओगे," डबलू बोला। जाहिर है, उसकी आवाज थोड़ी ऊँची थी।

आज सब के ऊपर माता आ गई थी। कोई चुप ही नहीं हो पा रहा था। ऐसी स्थिति में समझदारी इसी में होती है कि थोड़ी देर चुप बैठा जाए, और मामले को अलग से बाद में निपटाया जाए। ठंडे दिमाग का थोड़ा फायदा मिलता है।

बस दिक्कत ये थी कि वहाँ कोई समझदार नहीं था।

अरे हाँ भाई! हम थे वहाँ। पर क्या है कि दोस्ती के आगे हमारी समझदारी पी के टुन्न हो जाती है। फिर न हमको कुछ समझ आता है और ना हम किसी को कुछ भी समझा पाते हैं।

वैसे डबलू और प्रकाश के जीवन में अगर कोई ‘ज्ञानवान’ के आसपास भी है, तो वो हम ही हैं। पर कभी-कभी वो हमारी सलाह मानने से इनकार कर देते हैं।

पूरी तरह से एक असंबंधित टिप्पणी पर, 'अक्सर' भी एक अच्छा शब्द है। है ना?

खैर, हमारी शालीनता और डबलू के अचूक अपशब्दों के मिश्रण के साथ, बड़ी देर के बाद मैटर तीनों के बीच क्लियर हुआ। ध्यान दिया जाए कि अभी तक सिर्फ मैटर क्लियर हुआ था। करना क्या है, अब भी एक बहस योग्य मुद्दा था।

वैसे अगर किसी ने ध्यान दिया हो, तो इस पूरे वृत्तांत एवं वार्तालाप को हम संक्षेप में निपटा रहे हैं। शॉर्ट में, हमारा मतलब। गहराई में न जाने का कारण ये है कि इस पूरी बातचीत के दौरान हमारी एक भी बात नहीं सुनी गई। ऐसा नहीं है कि हमने कुछ कहने की कोशिश नहीं की। अरे हमारी तो आँखें बोल देती हैं। पर फिर भी, हमने बहुत कुछ कहा। जैसे लड़ाई के बीच वो जो समोसे मंगवाए थे, आम की चटनी के साथ, हमारा ही आईडिया था।

फिर भी कोई इज्जत नहीं।

तंग तो हम भी आ गए हैं यार।

बुरा लगता है।

"अरे बुरा लगता है तो जाओ ना," डबलू गुस्से में बोला, "यहाँ काहे मुँह फाड़ रहे हो।"

"हओ! चले जाएँगे," प्रकाश उत्तेजना से पूर्ण आवाज में बोला।"

बीच में हुई बातचीत, जो हम अपनी बेइज्जती होने से बचाने के लिए खा गए, उसका सार बताए देते हैं।

अब तक प्रकाश समझ तो गया था कि चमन बाबू का कार्यकाल लगभग समाप्त हो चुका है, पर मानना नहीं चाहता था। वो उनके आखरी वक्त में उनका साथ देना चाहता था। उसे सही-गलत की कोई परवाह नहीं थी। उसके लिए तो बस पटेल बाबू का, किसी भी तरह से, इस समस्या से बाहर निकल जाना जरूरी था, फिर चाहे जहाँ उलझना पड़े।

वहीं दूसरी ओर, डबलू को वकील साहब की बात जंच गई थी। भाई को समझ आ गया था कि थोड़ा झूठ बोलना पड़े तो ठीक, पर समझदारी पतली गली से निकलने में है। उसने पूरी बातचीत में जिस तरह तीन बार चमन पटेल की तूलना उड़ते तीर के साथ की थी, हमको तो उसमें साक्षात अपनी अम्मा नजर आने लगी थी। उसके पैर हम बस इसलिए नहीं पड़े कि डायलॉग-वायलॉग तो ठीक था, अपनी बात में वो अम्मा वाला स्वैग नहीं ला पाया।

अरे आसान है क्या?

"अब इससे ज्यादा आसान क्या होगा?" प्रकाश बोला, "बस कह दो कोर्ट में कि हमने कुछ नहीं किया, बाकी इनका पता नहीं। और पटेल बाबू को डूबने दो कीचड़ में। वो चले जाएँगे जेल और आप लग जाओगे धंधे-पानी में। पर उसके बाद क्या? कैसे जियोगे ये जानते हुए कि कोई उस गुनाह की सजा अकेले काट रहा है, जिसमें हमारा भी बराबर का हाथ है। कैसे आएगी नींद रात में?"

"आ जाएगी हमको नींद," डबलू ने जवाब दिया, "बहुत मस्त आएगी। और नहीं आएगी तो नींद की गोली खा लेंगे। पर सिर्फ इसलिए जेल नहीं जाएँगे कि कोई और भी जा रहा है। हम थोड़े सनकी जरूर हैं, भोले भी हैं, पर पागल नहीं हैं।"

"वो तो आपको भी नहीं पता।"

किन्हीं कारणों से हम उस बातचीत में हुए गालियों के प्रयोग को बार-बार दरकिनार कर रहे हैं। निवेदन ये है कि उपयुक्त स्थान पर सब अपने-अपने हिसाब से खुद ही सोच लें कि कब, क्या, कैसे और किस भाव से कहा गया होगा।

बाकी दोनों के बीच बातचीत बढ़ती गई, मुद्दा सुलझने की दशा से दूर जाता गया, और बात वहाँ आकर रुकी जहाँ पर फ्लैश-बैक शुरू हुआ था।

भूले तो नहीं?

"हाँ कर लेंगे हम खुद ही कुछ," प्रकाश गुस्से में बोला।

"तो जाओ ना बे," डबलू दस प्रतिशत और ज्यादा गुस्से में बोला। "जो करना है, जहाँ करना है, जैसे करना है, कर लो। बस हमारे सामने मत आ जाना कभी, नहीं तो ऐसा निपटाएँगे कि निपट ही जाओगे।"

"हओ!" डबलू को अनदेखा, अनसुना... सब करते हुए प्रकाश बोला, "कौनो माधुरी दीक्षित नहीं हो कि मर रहे हैं आपको देखने के लिए। कर लो बँटवारा अब तो। हमसे भी ना हो पाएगा आगे से ऐसे काम। समझ नहीं आता सिर है कि नारियल। साला कुछ घुसता ही नहीं है इनके अंदर। अरे! तंग आ गए हैं यार हम। अब तो कतई ना हो पाएगा हमसे।"

"अब बस करो बे तुम दोनों।" हम लगभग झुंझला गए थे। इतना ज्यादा कि हम कुर्सी छोड़कर, खड़े होते हुए, ऊँची आवाज में बोले।

वैसे हम उठे पानी पीने के लिए थे। पर हमारे खड़े होते ही जैसा माहौल बना, वो क्षण हम खोना नहीं चाहते थे। डबलू और प्रकाश एक तरह से सकते में आ गए थे। टशन बरकरार रखते हुए हमने आगे कहा, "क्या बँटवारा-बँटवारा लगा रखा है बे? अम्मा कसम इतना तो चाचा और जिन्ना नहीं लड़े होंगे 1947 में।"

हमने अपने टशन का रुख प्रकाश की ओर मोड़ा, "ना कुछ सोचना है, ना कुछ समझना है, बोलना है बस तुमको। अबे दिमाग लगाने की थोड़ी तो कोशिश किया करो। आसान है, सच कह रहे हैं। अब तो डबलू भी लगाना सीख गया है। बहुत आसान है। पर नहीं, करना तुमको सब कुछ बस बिना सोचे-समझे ही है। अलग! अलग! अलग! अलग! अबे क्या अलग हो जाओगे? और कहाँ जाओगे अलग होकर? जाओगे वो तो ठीक, घिस लोगे खुद का कहीं-न-कहीं, पता है हमको, पर किसके लिए?"

फिर आई बारी डबलू की, "और तुम, बहुत ज्ञानी हो ना? किसी से भी कहीं भी लड़ने को तैयार हो जाते हो। बहुत धंधे वाले हो गए हो? बिल्डर डबलू पांडे। भूल गए जब बिल्डिंग के नाम पर बस शौचालय ही बनाया करते थे। भूल गए वो मंदी के दिन जब काम के लिए यहाँ-वहाँ ठोकर खाते फिरते थे। भूल गए वो सब कुछ जो तुमने हमारे साथ सहा था। बड़े आए अकेले धंधा सँभालने वाले। अबे साइन भी कर लेते हो ढंग से कि चल दिए खुद ही टेंडर भरने।"

अब तो कसम से मजा आ रहा था बोलने में।

"छोटी सी कोई बात हुई नहीं कि आ गई दरार। चले हैं बँटवारा करने। अबे! फिल्मों में भी ढाई घंटे लग जाते हैं दोस्ती टूटने में, तुमने तो साला आधे घंटे में ही सब बंटाधार कर लिया। वो तो फिर भी हिरोइन के लिए लड़ते हैं तो समझ आता है। तुम काहे लड़ रहे हो? हम मानते हैं कि चमन पटेल के अलावा और भी कारण हैं। छोटे-छोटे। जो जाने कितने सालों से सबके मन में दबे हैं। पर वो तो हर धंधे में होते हैं। केस की आड़ लेकर लगे फूटने। अरे धंधा छोड़ो, दोस्ती से ऊपर है क्या कुछ? बात करते हो?

छोटू...! अबे पानी लाओ यार तुम।"

हमारी पूरी बात लगभग चार मिनट तक चली। गालियों को हटा कर बस इतना ही बता पा रहे हैं अभी। बाकी लगा लो खुद ही दिमाग। अब तो प्रकाश भी समझ गया है कि आसान है दिमाग लगाना।

अगर किसी को लग रहा है कि हमारे भाषण का किसी पर कोई असर हुआ होगा, तो हम उसकी

सोच को सलाम करते हैं। तहे दिल से। पर सच्चाई ये है कि हमने तो बस एक बीन बजाया था, दो भैंसों के आगे।

पर ऐसा भी नहीं है कि कोई अंतर नहीं आया। अब छोटू हमको बिना बोले ही पानी पिलाया करता है। पर डबलू और प्रकाश, दोनों अब भी अपनी ही बात पर अड़े हुए थे।

*** *** ***

एक तरफ अम्मा की शिकायतें, तो दूसरी तरफ धंधे में संभावित रुकावट। एक तरफ कोर्ट के चक्कर, तो दूसरी तरफ पिंकी जी को लेकर असमंजस की स्थिति। कभी 'हाँ' की उम्मीद, तो कभी 'ना' का डर। कम शब्दों में कहें तो जीवन डाँवाडोल और लुटिया डूबती हुई नजर आ रही थी। ये भी कह सकते हैं कि घड़ी दुविधाजनक थी। दीवार पर बाकायदा लगी तो थी, पर चल नहीं रही थी। खराब हो गई होगी शायद।

"ऐसे देखने से सुधर जाएगी क्या?" अम्मा ने हमसे कहा। ये सवाल तब आया जब उसी रात, अपने कमरे में दीवार की ओर नजर गड़ाए हम कुछ सोच रहे थे।

हम चाहते तो थे कि कह दें कि अभी घड़ी की इतनी औकात नहीं हुई है कि हम उसे देखें। पर न तो ये किसी साउथ की मूवी का डब्ड सीन चल रहा था, और ना ही इस बात में एक तिनके भर की भी सच्चाई थी।

वैसे माहौल सही से समझाने के लिए हमको अपने कमरे के दृश्य और स्थिति का विवरण देना चाहिए। पर दिक्कत ये है कि अगर बता दिया तो लोग हमको जज करने लगेंगे। इसलिए नहीं बता रहे हैं।

सूरज के अट्ठाईस चक्कर काट चुके हैं, पर आज भी कोई दिक्कत आती है तो सबसे पहले अम्मा याद आती है। अब माँ तो माँ होती है। उस पर भी 'हमारी'! इतना डेडली कॉम्बिनेशन तो इंजीनियरिंग और एम.बी.ए. का भी नहीं है।

मजाक नहीं कर रहे हैं।

मजाक तो ये कॉम्बिनेशन है। खैर...!

हमारी तो ये बचपन से ही आदत रही है कि कोई भी दिक्कत, दुविधा, समस्या या परेशानी हो, तो बस अम्मा के आगे लाकर पटक दो। समाधान मिले-न-मिले, उसको देखने का नजरिया जरूर बदल जाता है।

"कहाँ दिक्कत आ रही है?" हमारा कोई जवाब न आने पर अम्मा ने थोड़ा जोर देकर पूछा।

हमने अम्मा को सब कुछ पहले से ही बता रखा था। वो बात जो तब शुरू हुई थी जब चमन बाबू के ऑफिस से हमको रोड बनाने का पहला काम मिला था। वो बात जो कोर्ट का बुलावा आने पर खत्म हुई। हाँ! खत्म नहीं हुई, हम जानते हैं। बल्कि एक नई कहानी शुरू हो गई। पर अब फ्लो-फ्लो में निकल ही गया है तो चला लो, ज्यादा छोटी-छोटी बातें न पकड़ो, बड़े आए।

हाँ, तो हम कह रहे थे कि हम अक्सर अम्मा को सारी बात बताते हैं। क्या, क्यों, कब, कैसे, सब। एक तो जो सुबह वकील साहब द्वारा मिले ज्ञान पर असमंजस था, और दूसरा शाम को जो डबलू और प्रकाश ने गुड़-गोबर किया था, बस यही अम्मा से छुपा था।

और छुपा भी क्या था? और कितनी देर? हमको देख कर ही अम्मा सब भाँप गई। अंतर्यामी कम थोड़ी है।

"डबलू और प्रकाश आज झगड़ लिए," हमने कहा।

"वो तो दिख रहा है तुम्हारी शकल में। पर ऐसी कौन बात हो गई कि लड़ना पड़ गया?"

"अब क्या बताएँ अम्मा? सब खेल उस केस ने उलझा रखा है। और-तो-और उस कमबख्त वकील ने सबका दिमाग अलग फेर दिया है। डबलू तो अब कुछ और सुनना ही नहीं चाहता है। कह रहा है जो हो रहा है होने दो और चुप-चाप गवाही दे आओ कि चमन पटेल को हम जानते भी नहीं। और इधर प्रकाश कह रहा है कि पटेल बाबू के साथ कुछ गलत नहीं होने देगा। आखरी तक साथ देगा।"

"तो?"

"तो क्या?"

"तो क्या दिक्कत है?"

"दिक्कत ये है कि दोनों लड़ रहे हैं। धंधा अलग करने की बात कर रहे हैं। बीच में फँसे हैं हम, और हमको कुछ समझ नहीं आ रहा है कि क्या सही है और क्या गलत?"

"बेटा यूँ तो ज्ञान बहुत है हमारे पास, तुमको बगल में बैठा कर झाड़ भी सकते हैं। पर क्या है, कि ये जो गलत-सही समझने निकले हो ना तुम, वो कभी भी नहीं आने वाला। ना हमारे समझाने से, और ना ही 'ना' समझाने से।

असल में गलत-सही जैसा कुछ होता ही नहीं। आज जो गलत है वो कल सही हो सकता है। कल जो सही था, आज गलत हो सकता है। जो हमारे लिए सही है वो किसी और के लिए गलत हो सकता है। जो किसी और के लिए सही है वो हमारे लिए गलत हो सकता है। तुम तो बस वो कर सकते हो जो तुम्हारा दिल चाहता है। और तुम क्या, हर कोई वही करता है जो उसका दिल चाहता है। दिल के खिलाफ जाकर कुछ करना, एक तरीके से दिल का कहा ही तो मानना है। सब नजरिए का खेल है बबुआ।“

इसके बाद रेडियो चलता रहा और अम्मा लगी रही... ये समझाने में कि क्यों हमारा कुछ भी समझना जरूरी नहीं है।

आज हम वो अम्मा वाला पूरा ज्ञान यहाँ नहीं उढ़ेल रहे हैं। इसलिए नहीं कि हमको किसी पर दया आ रही है। वो तो बस थोड़ा लंबा हो गया था, तो बताने में आलस आ रहा है।

हमारी अम्मा से हुई पूरे बावन मिनट की बातचीत के तीन सार निकले। एक तो ये कि सही-गलत

जैसा कुछ भी नहीं होता। दूसरा ये कि अगर होता भी है, तो किसी को फरक नहीं पड़ता। और तीसरा ये कि अम्मा से बावन मिनट बात करना जहन के लिए हानिकारक है। कसम से सब घूम जाता है।

यूँ निकालने जाएँ तो और भी सार निकल जाएँ, शायद। पर कहा ना, फरक नहीं पड़ता।

वो दिन जैसा बीता, और जो हमारा हाल हुआ था, 'हम पूरी तरह से टूट चुके थे' कह देना नाकाफी होगा। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि बस कोई आकर कह दे कि आपके साथ एक छोटा सा मजाक हुआ है। सब ठीक है। शायद कोई तस्सली आ जाए। पर नहीं। कोई क्यों करेगा मजाक हमारे साथ?

11. ज्यामिति

यूँ तो जिन दुविधाओं से हम जूझ रहे थे, हमारा तनिक टेंशन में होना बनता था। पता नहीं पर क्यों, हम फिर भी लगभग आश्वस्त थे।
चमन पटेल जेल चले जाएँ, तो क्या? धंधा चौपट हो जाए, तो क्या? काम में बँटवारा हो जाए, तो क्या? हम जिंदगी भर कुँवारे ही रह जाएँ, तो भी क्या? अब इतनी सी बात के लिए हम टेंशन थोड़ी लेंगे। अरे 'निश्चिंत' तो हमारा मिडिल नेम है। बबलू निश्चिंत शुक्ला। बात करते हो?

ये तो हुआ दुनिया के लिए। अब खुद की बात करें, तो हमारी लगी पड़ी थी। हालत ये थी कि सिर्फ एक शब्द 'खराब' भर कह देना उस स्थिति के साथ पूरी तरह से न्याय नहीं कर पाता, जिसमें हम लटक रहे थे। हाँ शायद, 'बहुत खराब' आस-पास तक आ जाता, पर परफेक्ट तो वो भी नहीं होता।

और ऐसा भी नहीं है कि हमारे सामने इस तरह की दिल दहलाने वाली परिस्थिति पहली बार आई थी। कई बार आई और नाश्ता कर के चली गई। अरे पुलिस केस में भी अंदर हो चुके हैं हम। बहुत बड़े आंदोलनकारी हैं तुम्हारे श्री बबलू शुक्ला। कभी बताया नहीं तो क्या? महात्मा गाँधी और हरिदास श्रीवास्तव के बाद, हमारा ही नाम चलता है।

हरिदास श्रीवास्तव हमारे गाँव के टेलर हैं। सब सिल देते हैं। उनका नाम आंदोलनकारियों में क्यों है, ये एक अलग चर्चा है। खाते में जोड़ लेना, कभी चाय पर विस्तार से करेंगे।

वैसे ये बात हम किसी को तब तक नहीं बताते जब तक वो प्लीज न बोल दे। आधे 'प' से पूरे 'ज' तक। अभी जीवन में निठल्लापन थोड़ा बढ़ गया है तो बता दे रहे हैं। जिस समय की हम बात कर रहे हैं, वो लगभग हमारा बचपना ही था। ये कहानी बहुत पहले की है।

पेट्रोल-डीजल तक तो ठीक था, बढ़ा लेते जितना दाम बढ़ाना था। पर उस रोज बात शराब पर आ गई थी। बस फिर, दिल दुःख गया हमारा। भरतपुर के एकलौते ठेके पर क्या प्रदर्शन किया था उस दिन? और जन सैलाब! मानो पूरा का पूरा गाँव हमारे साथ हो गया था। समय बहुत है ना, यहाँ लोगों के पास। चौदह साल की उम्र से लेकर इकहत्तर तक के लोग शामिल हुए थे उस मुहीम में। क्या तो नारे लगे थे? और क्या जोश था उस आंदोलन में। मानो सबकी आवाज सीधे उनके दिल से निकल रही थी। क्या तो पुलिस की एंट्री हुई थी वहाँ? और क्या डंडे खाए थे सब ने? किसी के

सुर फिर भी कम होने को तैयार ही नहीं थे।

लोग तो लॉक-अप में भी चुप बैठने को राजी नहीं हुए। केस हो गया था हमारे नाम पर। नेता जो बने फिर रहे थे। पूरे गाँव के शुद्ध शौकीनों के स्व-नियुक्त प्रतिनिधि।

दुविधा वो भी थी। और बड़ी थी। हाँ! पर तब बस इतना सा अंतर था कि डबलू और प्रकाश हमारे साथ थे। यूँ एक दूसरे के दुश्मन बने नहीं फिर रहे थे।

दोस्तों का साथ चीजें आसान कर देता है, ये बात किसी को मनाने की जरूरत नहीं है। सबको पता है। और डबलू और प्रकाश तो 'जान' हैं हमारी। दोनों अपने-अपने ब्याह के बाद 'वर' भी बन गए। तो अब 'जान-वर' कंप्लीट-कंप्लीट सा लगता है। नहीं?

हाँ! हाँ! गाली देने की कोई जरूरत नहीं है। भटक जाते हैं कभी-कभी। हमारा तो कुछ कहना भी सबको काटने को दौड़ता है।

हम तो बस ये कहना चाह रहे थे, कि कोई पहली बार अड़ी में नहीं आए थे हम। जो धंधा हम करते हैं, और जिस टशन में रहते हैं, ऐसी समस्या, दिक्कत और परेशानियाँ आम बात हैं। इन सब की तो जैसे आदत हो गई है हमको। पर इस बार जाने काहे नरबसा रहे थे?

'डरने' और 'नरबसाने' का अंतर याद तो है ना?

रहने दो। हम भी क्या पूछ रहे हैं? याददास्त इतनी अच्छी होती तो यहाँ थोड़ी होते?

बहरहाल, मुद्दे की बात ये है कि उस पल भी जब सब कुछ छूटता जा रहा था, सब कुछ रेत की तरह हाथ से फिसल रहा था, हमको किसी की याद आ रही थी। कुछ भी समझने जैसा नहीं था। फिर भी लग रहा था कि जैसे कोई समझा देगा कि क्या समझना रह गया। उस वक्त जब हमारे दिमाग को ‘कुछ’ नहीं सूझ रहा था, तब हमारे दिल को 'कोई' सूझ रहा था। ये शायद वो पल था, जब ‘हमारे’ होने के लिए, ‘किसी का’ होना लाजमी बन गया था।

*** *** ***

"अच्छे लग रहे हो," पिंकी जी ने कहा।

तेरह साल का स्कूल और दसवीं तक की पढ़ाई, फिर भी हमको किसी ने नहीं सिखाया कि इसके बाद क्या बोलते हैं। ऐसे में एक बार के लिए हमारा सकपका जाना तो बनता है।

"आप भी," हमने काफी सावधानी और सतर्कता से कहा।

हालाँकि हमारे दिमाग में था, 'इसमें नया क्या है? हम तो हमेशा से ही तबाही दिखते हैं'। और जितनी तैयारी में थे, बस फूटने ही वाले थे।

पर इस जवाब के आड़े, हमारा दिल आ गया।

किसी के जहाज न चल रहे हों तो यहाँ पर अभी-अभी जो हुआ, उस पर एक मिनट रुक कर हम अलग से चर्चा करना चाहेंगे। आगे की पीढ़ी को प्रशिक्षित करने में इस उदाहरण का हम आज भी

प्रयोग करते हैं। कुछ भी हो जाए, बता रहे हैं कहीं लिख लो काम आएगा जीवन में, कभी भी दिल के आगे मजबूर मत हो जाना। क्षणिक सुख जरूर है, पर बाद में दिक्कत देता है। अगर 'दिल' तुम्हारे 'दिमाग' से कुछ हटकर कह रहा है, तो उस खयाल को ऑप्शन में भी मत रखो। सिरे से दरकिनार कर दो। अम्मा कसम कोई बुरा नहीं मानेगा। दरअसल इसमें दिक्कत ये है कि साला पता भी नहीं चलता कि क्या हो रहा है? बस हल्का-हल्का निपट रहे होते हैं, और निपटते चले जाते हैं। जैसे की हम... तब!

हमने तो बस यूँ ही कह दिया था 'आप भीं'। अब क्या बताएँ मैडम कैसी दिख रही थीं? किसी हरे-भरे खेत में उगा कोई चटक पीला फूल शायद। या बारिश भरी रात के बाद की सुबह, गुनगुनी धूप में खुद को निखारती हुई। या बादलों के पीछे छुपा हुआ चाँद जो अचानक निखर आया हो शर्म के पर्दे के पीछे से। हमको नहीं पता। हम तो अब इस मुद्दे पर भी नहीं जाना चाहते कि उन्होंने क्या पहन रखा था? कितना खिल रहा था उनपर वो काली धारियों वाला पीला सूट? वो माथे पर छोटी सी बिंदी, कानों में बड़े-बड़े झुमके और खुले बाल, हम नहीं कहेंगे कि कितना जंच रहे थे उस मासूम से चेहरे पर।

हम जितना उनको देखते, उतना खुद को खोने लगते। कमबख्त हम आशिकी के उस पड़ाव पर आ गए थे जब आप सामने वाले को देखते नहीं, 'निहारते' हो।

वो फ्लो-फ्लो में 'मासूम' कह गए। स्थिति और भावनाओं के सही चित्रण के लिए इस शब्द का नजरअंदाज कर दिया जाना उचित होगा। एक लाइन एक्स्ट्रा लग जाए तो लग जाए, पर 'सुंदर' और 'मासूम' में जो अंतर है, उसका सम्मान तो करना ही पड़ेगा।

"अच्छा जी!" उन्होंने थोड़ा जोर देकर, अजीब से लहजे में कहा, "सीख रहे हो, हल्का-हल्का।"

जहाँ हम कमबख्त सब भूलते जा रहे थे, इलजाम हमपर सीखने का था। जवाब था इसका भी, पर हमने न देना ठीक समझा।

बातों-बातों में हम शायद बताना भूल गए कि हमने पिंकी जी से मिलने की गुजारिश की थी। कहाँ? जगह महत्वपूर्ण नहीं है। हाँ, हमको जज करने के हिसाब से जानना है तो ठीक है, 'शिव मंदिर'। लॉजिक अपनी जगह है, दुनियादारी अपनी। पर एक बार जो जगह दिल ने कह दिया, फिर कौन कुछ और सुनेगा? हम यूँ तो मंदिर-वंदिर में विश्वास नहीं रखते, पर वो सुकून कहीं और नहीं मिलता, जो वहाँ होता है।

हम ये नहीं कह रहे हैं कि हम भगवान को नहीं मानते। मानते हैं। पर मूर्तिपूजा पर विश्वास नहीं रखते। हम तो ये मानते हैं कि भगवान हर जगह है। और जब भगवान हर जगह हैं, तो मंदिर होने का औचित्य क्या?

अब कर लो जज!

"क्या हुआ?" उन्होंने फिर पूछा। "कुछ खास काम था या यूँ ही बुला लिया?"

"अगर कह दें यूँ ही बुला लिया तो?"

हमने पिंकी जी को छेड़ना चाहा।

"तो कह दो, हमको क्या? पूजा कर के चले जाएँगे।"

पर छेड़ नहीं पाए।

“सच कहें तो कभी-कभी ऐसा लगता है कि हम बंदर हैं और आपका साथ 'अदरक का स्वाद'।”

पिंकी जी खिलखिला उठीं।

बातें होने लगी, वक्त बीतने लगा। हमने आज तक कभी किसी को भी अपने बौद्धिक स्तर के इतना नजदीक नहीं पाया, जितना पिंकी जी आ गई थीं। हाँ! वो जो अम्मा हमारे साथ किया करती है, उसका हिसाब अलग डायरी में रहेगा। कितना अच्छा लगता है ना, किसी ऐसे इंसान के करीब होना, जिसके सामने बोलने से पहले कुछ सोचना न पड़े?

दिन चढ़ने को तैयार खड़ा था, और हम पीपल की छाँव में बैठे, उसे नजरअंदाज कर रहे थे। हमारे सामने लोग आकर जाते जा रहे थे। पर हम अपना दिल रोके, वहीं रुके हुए थे।

"कोई दिक्कत है क्या?" पिंकी जी ने पूछा।

"दिक्कत! हमको! अरे हम वो हैं जो रास्ता काट दें तो बिल्ली भी दो मिनट के लिए सोच में पड़ जाए - आगे जाए या किसी का इंतजार करे? हमको काहे की दिक्कत?" और हम मुस्कुराने लगे।

उस समय हमारा मुस्कुराना उतना ही सच था, जितना ये कहना कि इंजीनियरिंग में बहुत स्कोप है। गए वो जमाने।

"हाँ, दिख रहा है सब," अब पिंकी जी का लहजा थोड़ा बदल गया था। कोई अलग ही फुर्सत थी उनकी आँखों में, सिर्फ हमारे लिए। बड़े हक से कहा था उन्होंने। ऐसे, जैसे कि उनको परवाह हो। "जब से आए हो, कहीं खोए-खोए से हो। कहीं और ही ध्यान है तुम्हारा। समझ आ जाता है हमको कोई झूठ बोल रहा हो तो। और तुम! बबलू शुक्ला... तुम तो सच बोलने में भी घबरा जाओ, झूठ तो दूर की बात है। कुछ कहना चाहते हो तो कह दो।"

उन्होंने हमको ऐसे देखा, जैसे कितना पहले से जानती हों। कि उनको पता है हमारे बारे में, सब कुछ। कि वो समझती हों हमको, पूरी तरह से। उनको पूरी उम्मीद थी कि हम कुछ कहने वाले हैं।

पर हम चुप थे। ये वो सवाल था जिसका जवाब हमको पता था, बस देना नहीं चाहते थे।

"अब बोल भी दो यार।"

हम बहुत छोटे थे जब पिताजी का देहांत हुआ था। इस बात का हमारे मन में एक अलग ही असर पड़ा है। बचपन से आजतक हमने यही सीखा है कि कभी भी खुद को किसी के आगे कमजोर मत होने दो। हमारे अंदर का ये आत्मविश्वास अपने आप नहीं आया है। ये हमारी जिंदगी ने हमको दिया है। ज्यादा कोई रहा नहीं ना हमारे साथ, जिस पर कभी निर्भर हो सकते थे। ऐसे में खुद पर विश्वास हो-न-हो, हमको मानना पड़ा कि ‘हैं’। हम सब देख लेंगे। हमने आजतक सबको अपना विजयी चेहरा ही दिखाया है। कभी भी किसी के सामने हार नहीं माने। या कभी मान भी गए, तो

खुद को कमजोर जाहिर नहीं होने दिया। बड़ी-से-बड़ी दुविधा आई, और आकर चली गई। पर हम डटे रहे, अपने अविजित सिद्धांत पर। स्थिति कैसी भी रही हो, हमने दुनिया को हमेशा यकीन दिलाया है कि हम सब सँभाल लेंगे। हम जानते हैं, बचपन में 'बचपना' न होना कैसा होता है।

पर इन सब के बावजूद, उस दिन हम टूट गए। मंदिर की घंटियों के कोलाहल के बीच, जब पंछियों का चहचहाना किसी अलग ही खामोशी सा लग रहा था, तब हम उस सवाल का जवाब दिए बिना रह न सके। हम टूट गए। हम हार गए उनके अपनेपन के आगे।

ये शायद हमारे सबर का बाँध टूटा था, या था वो कोई अलग ही बंधन, जो उस पल पिंकी जी से जुड़ गया। अब हम तैयार थे ये कहने के लिए कि हम थक चुके हैं, कि हम अब हार मानते हैं।

"हमको समझ नहीं आ रहा है कि अब क्या करें?" हमने कहा।

हमने इतना कहा ही था कि उनका हाथ हमारे हाथों पर आ गया।

सिर्फ माहौल बनाने के लिए नहीं कह रहे हैं, उस पल हमारी आवाज में एक अलग ही गहराई थी। एक अलग दर्द और अकेलापन था। आज शायद पहली बार हम किसी के सामने अपना दिल खोलकर रख देने को तैयार थे। आज शायद पहली बार हम ये नहीं सोच रहे थे कि कोई क्या सोचेगा?

वो किसी जवाब के इंतजार में हमारी तरफ देखने लगीं और फिर उन्होंने पूछा, "क्या हुआ?"

उनकी हथेलियों ने हमारी हथेलियों को जिस तरह से थाम लिया था, ये समझ लो कि उस बंधन से छूट जाना किसी गुनाह से कम न होता।

फिल्मों में स्लो-मोशन देखा है?

नहीं! कुछ नहीं। बस ऐसे ही अचानक याद आ गया।

शब्दों के अलावा और जो भी कहना था, सब हमारी आँखों ने एक नजर में ही कह दिया। आखिर उन्होंने पहला जवाब हमारी आँखों से ही तो माँगा था। उनको शायद पहले ही सब समझ आ गया था। वो फिर भी इंतजार में थीं कि हम कुछ बोल दें।

"चमन पटेल... पी.डब्लू.डी. के अफसर हैं, हमारे कर्ता-धर्ता और हमारे धंधे की जान। वो जाने वाले हैं जेल। और डबलू और प्रकाश अलग होना चाहते हैं। महाभारत कर रखा है दोनों ने।" हम बेधड़क आगे बोले, "गवाही है कोर्ट में कल। चमन बाबू पर केस चल रहा है, रिश्वतखोरी का। कोई अपराध-बोध नहीं है हमको। बेशक किए होंगे हमने भी कई गलत काम जीवन में, पर ये उनमें से एक नहीं है। सबने दिया है, हमने भी दिया है। अगर हम न देते तो कोई और देता। कोई दूसरा नहीं देता तो कोई तीसरा दे देता। वो तो जो होना था वो हो गया। हम तो बस एक माध्यम थे। अब अड़ी इस बात पर है कि चमन बाबू के खिलाफ गवाही देने को बुलाया गया है... ...।"

हम अब भी बोल रहे थे। वही दिक्कत, समस्या, परेशानियाँ, जो पूछने पर सब कुछ नींद में भी बता देते। अरे हम तो ये कहते हैं कि दो मिनट के लिए भूल जाओ हम क्या कह रहे थे। भूल जाओ कि हम क्या कहना चाहते थे। कुछ याद करने लायक है तो हमारी सोच, जो उस पल, उस क्षण,

उनकी आँखों में उलझ कर रह गई थी।

दुनिया की हर बात का जवाब देने वाली लड़की, आज सिर्फ सुन रही थी।

"आज दो रास्ते हैं हमारे पास," हमने फिर बोलना शुरू किया, "झूठ कह दें और खुद बच जाएँ, इस उम्मीद के साथ कि शायद कोई और भी बच जाए अपने गुनाहों की सजा पाने से। या सच कह कर खुद भी सामना करें उस सजा का।"

हम अपनी बात जलेबी जितने सीधे शब्दों में रख रहे थे। अब पिंकी जी को भी क्या समझ आया होगा? हमने खुद मन में तीन बार दोहराया था। पर वो अब भी हमको उसी शिद्दत से देख रही थीं, उसी उम्मीद के साथ, कि आज हम अपने दिल की सारी बातें, कह देंगे।

हमने सब कुछ कहा। कोर्ट की दुविधा से लेकर मन के असमंजस तक। डबलू-प्रकाश के बीच झड़प से लेकर खुद के टूट जाने तक। हमने वो भी कहा जो शायद किसी और समय, किसी और से, कभी न कह पाते।

"डबलू चाहता है कि झूठ कह दें और अपना पल्ला झाड़ लें। प्रकाश चाहता है कि सच कहें चाहे झूठ, चमन बाबू का साथ न छोड़ें। फिर फाइन लगे तो लगे, जेल जाने की नौबत आए तो आए। हमको कुछ समझ नहीं आ रहा है कि क्या करें।"

"शुक्ला जी!" अपनी चुप्पी तोड़ते हुए मोहतर्मा बोलीं, "सब जानना है! क्यों? चलो एक खेल खेलते हैं।"

थोड़ा अटपटा सा था उनका जवाब। पर एक सुकून था उनका कुछ कहना। एक यकीन उन आँखों पर, कि हमारे 'हाँ' कह देने के अलावा और कुछ भी जायज नहीं।

ज्यादा होने लगे तो बता देना, थोड़ा कम कर देंगे।

"खेल?" हमने पूछा।

"चलो अपनी आँखें बंद करो," पिंकी जी ने हमको लगभग अनसुना करते हुए हमारे दोनों हाथों को अपने हाथों में ले लिया। उन्होंने मान लिया कि हमने हाँ ही कहा है।

बाकी जो भी आशिकों सी झाड़ लें अभी, सच कहें तो 'हाँ' या 'ना' का कोई विकल्प नहीं था हमारे पास।

"दो ऑप्शन हैं ना तुम्हारे पास?" बिना किसी अर्ध विराम के, उन्होंने कहा, "दोनों मुट्ठी में एक-एक रख दो। जकड़ कर रखना, कहीं गिर न जाए।"

आँखें बंद, कान खुले। और अब हमारे दोनों हाथ हवा में थे, एक-एक ऑप्शन के साथ।

"हम अब एक ऑप्शन चुनेंगे," उन्होंने आगे कहा, "बस मान लेना कि जो भी हमने चुना, वही हमारा मत है।"

*** *** ***

अम्मा सही कहती है। सही-गलत जैसा कुछ भी नहीं होता। हर वो गलत चीज सही हो जाती है, जो आपको आपका दिल मना ले कि बस यही सही है। पिंकी जी भी खेल गईं। बिना कुछ कहे हमको वो बता दिया जो शायद हमारा दिमाग मानने को तैयार नहीं था, जो हमारा दिल असल में चाहता था।

12. सांख्यिकी

अपने वक्त के काफी सधे हुए दूरदर्शी, उपदेशक एवं दार्शनिक श्री रामाधीर सिंह जी ने कहा था, 'जब तक इस देश में सनेमा है... लोग बेवकूफ बनते रहेंगे'।
जिनको याद आ गया, वो मुस्कुरा रहे हैं। जिनको नहीं याद आया, वो या तो फिल्म नहीं देखते, या देखते भी हैं तो उनकी पसंद निंदनीय है। कहानी पारिवारिक रहे इसलिए हमने इस लाइन को हल्का सा सेंसर किया है।

खैर, किसी महान पुरुष ने कहा था कि सेंसर सिर्फ शब्द बदल सकता है, सोच नहीं।

वास्तविकता से दूर रह गए प्राणियों के लिए बता दें कि जिला न्यायालय बिलकुल भी वैसा नहीं होता जैसा फिल्मों में दिखाया जाता है। भरी हुई अदालत, मौखिक दलीलें, सवाल पर होते सवाल और जवाबों की झड़ी। बिलकुल भी नहीं।

सामान्य से थोड़ी ऊँची टेबल पर जज साहब, उनके बगल में बैठा कोई दुबला-पतला टाइपिस्ट, ठीक सामने रखी तीन-चार कुर्सियाँ और सिर पर डोलता 1973 का पंखा। बाकी पता नहीं, पर जहाँ हमारी गवाही थी, वो अदालत तो ऐसा ही था।

ना कोई कटघरा था, ना कोई 'गीता'। ना पुलिस वालों का हुजूम था, और ना आखरी में ताली बजाने के लिए बैठा जन सैलाब। वकील साहब थे, कागजी दलीलें थीं। टेबल पर फैली फाइलें थीं, और सरकारी वकील साहब के ठीक बगल में थे हम।

ठीक दस सेकंड पहले, हमारे नाम की आवाज आई थी बाहर।

"भास्कर शुक्ला!"

बस फिर! घुस आए हम अंदर।

*** *** ***

क्या प्रेम को परिभाषित कर पाना मुमकिन हैं? या बेकार ही हैं सब कोशिशें, अगर कोई कर रहा है तो?

"अबे हटो ना!" हम झुंझलाए, "मुँह में घुस जाओगे क्या?" पार्किंग से गाड़ी निकालते वक्त हमने कहा।

किसको?

महत्त्वपूर्ण नहीं है।

क्या चलते-चलते रुक जाना, बैठे-बैठे खो जाना, कहते-कहते चुप हो जाना, प्रेम का सही आकलन हैं? या भारतीय सिनेमा द्वारा दर्शकों के दिमाग में भर दिया गया सिर्फ एक भ्रम?

बीते दिनों हमारे खयालों में पिंकी जी का आना-जाना थोड़ा ज्यादा हो गया था। बेधड़क बस बिना किसी नोटिस के आ जाती थीं। हालात यहाँ तक आ गए थे कि हम अपने हर एक काम को उनसे जोड़ कर देखने लगे थे, कि ये कर दें तो वो क्या कहेंगी? ना करें तो क्या कहेंगी? वो हों या ना हों, पर हमने उनका 'होना', मान रखा था। यहाँ तक की अब भी, जब हम अदालत की सुनवाई छोड़कर, एक अलग ही धुन में डुगडुगी उठाए, भगे जा रहे थे।

पिंकी जी की खयाली स्वीकृति हमारे दिनचर्या का अभिन्न अंग बन चुकी थी।

देश अंग्रेजों से तो आजाद हो गया, पर अंग्रेजी से नहीं। अप्रूवल, हिंदी के गँवारों, स्वीकृति मतलब अप्रूवल। क्या होगा इस देश का? कसम से कभी-कभी तो चिंता हो जाती है।

खैर, इस पूरी स्थिति में समस्या बस इतनी सी थी, कि हमको हमारा ये हाल, अच्छा लगने लगा था।

*** *** ***

हम अदालत में बुला तो लिए गए थे, पर वकील साहब को देखकर लग रहा था कि अभी टाइम था। जब हम अंदर आए, वो टेबल पर बिखरे फाइलों के बीच कुछ ढूँढ़ रहे थे। सामने जज साहब भी विराजमान थे। उनको देखते ही उनके सम्मान में हमने सिर हिलाया। वकील साहब की लापरवाही पर थोड़े अधीर तो वो भी होंगे, पर चेहरे पर कुछ जाहिर नहीं होने दिया।

वो जज ही क्या जिसे कोई जज कर ले।

बेवजह ही खड़े रखा था हमको ग्यारह मिनट तक। हमारे समय की कोई कीमत है कि नहीं? पर हमने ‘शिकायत’ के नाम की 'चूँ' भी ना करी।

जवाब पता है ना हमको। इसलिए।

जब तक वकील साहब 'किसी' फाइल में से 'कोई' पेपर निकाल कर, 'किसी' पेन से 'कुछ' लिखने जितना तैयार न हो गए, तब तक हम नजरों से आस-पास को ही टटोलते रहे। वैसे तो सफेद दीवार, एक बड़ी सी घड़ी और गाँधी जी के मुस्कुराते हुए फोटो-फ्रेम के अलावा और कुछ खास नजर नहीं आया, पर मन लगा रहा।

हमको लगा था कि कोई 'वन टू थ्री गो!' बोलेगा। पर यहाँ तो बस यूँ ही सवाल जवाब शुरू हो गए।

कमबख्त नरबसाने का तो समय ही नहीं मिला।

वो गीता पर हाथ रख कर कसम खाने का कितना मन था हमारा। आधी रात तो इसी खुशी ने सोने नहीं दिया था।

"कैसे जानते हैं आप चमन पटेल जी को?" सरकारी वकील ने अचानक पूछा।

"अफसर हैं विभाग के," हमने सलीके से माहौल में ढलते हुए कहा। पारंपरिक तौर से हमको यहाँ पर नरबसाना था। पर जानकार लोगों को पता है कि हम परंपरा को खुद से ऊपर नहीं रखते। "अब जहाँ हमारा काम पड़ता है, वहाँ के अफसर को तो जानेंगे ही ना। उनके द्वारा स्वीकृत कई काम किए हैं हमने। बहुत अच्छे इंसान हैं।"

जिस तरह से दोनों वकील और जज साहब हमको देख रहे थे, हमको लगा कि हम माहौल में कुछ ज्यादा ही ढल गए। जाहिर है, जरूरत से ज्यादा बोल गए। अब कोई मीटर तो है नहीं कि नाप लेते।

माना पटेल बाबू इतने भी अच्छे नहीं हैं, पर हम पीठ-पीछे किसी की बुराई थोड़ी करेंगे। हमारा तो नियम है, किसी के पीठ-पीछे उसकी उतनी ही बात करो, जितना उसको मुँह पर बोल सको। वर्ना क्या फरक रह जाएगा हम में और गाँव की महिला-मंडल की सदस्यों में?

"आप कब से जानते हैं उनको?" अगला सवाल हाजिर था।

"तकरीबन पाँच साल पहले, पहली बार मिले थे," बड़े ही आत्मविश्वास भरी आवाज में हमने कहा। इतने की जरूरत तो नहीं थी, पर ठीक है।

"और आपके कितने प्रोजेक्ट चमन पटेल जी के कार्यालय से स्वीकृत हुए हैं?"

याद तो था, बिलकुल कंठस्थ। पर पता नहीं क्यों हमने 45 डिग्री ऊपर की ओर देखते हुए, कुछ गिनने जैसा स्वांग रचा।

"यही कोई सात-आठ।"

गाँधी जी का वो मुस्कुराता हुआ फोटो-फ्रेम याद हैं? अब लग रहा था कि जैसे गाँधी जी साक्षात हमारे सामने, हमको ही देखकर मुस्कुरा रहे हैं।

"सात या आठ?" आवाज थोड़ी कड़ी करते हुए, वकील साहब ने पूछा। उद्देश्य शायद ये रहा हो कि हमको बताया जाए कि ये एक अदालत है। गवाही को हल्के में लेना सही नहीं है।

अब उनको कौन बताए कि सही-गलत जैसा कुछ होता ही नहीं। आज जो गलत है वो कल सही हो सकता है। कल जो सही था, आज गलत हो सकता है। सब नजरिए का खेल है।

"ग्यारह," अचानक अम्मा पुराण से उभरते हुए हमने कहा।

ये जो 'सात' और 'आठ' के बीच अचानक 'ग्यारह' आ गया था, उससे माहौल में थोड़ा परिवर्तन आ गया। सभी ने एक दूसरे को देखा। पास बैठे टाइपिस्ट को छोड़कर, वहाँ मौजूद हर किसी के

चेहरे पर अलग ही भाव आ गए। इन सब से बेखबर, वो बेचारा अब भी लगा रहा खटर-खटर करने में। खैर।

"चमन पटेल पर रिश्वत लेकर टेंडर अप्रूव करने का इलजाम है," जज साहब थोड़े झुंझलाए हुए से बोले। "इस बारे में तुम्हारा क्या कहना है?"

जितना फोकस जज साहब ने 'इस' पर किया था, वकील साहब की सारी बकैती गई तेल लेने, और गवाही आ गई सीधे मुद्दे पर।

*** *** ***

हमको नहीं लगता अब ये मायने भी रखता है कि 'कब'? कब हम पिंकी जी को अपना मान बैठे थे? कब हमने ये फैसला लिया था कि बात अगर पूरे जीवन के बंधन की है, तो बात उनकी ही है। बेशक इस बात का फरक उनको नहीं पड़ता, या शायद किसी और को भी। पर हमको पड़ता है। और वो इसलिए कि हम जानना चाहते हैं वो खास पल, जब हमने अपनी जिंदगी का सबसे खूबसूरत फैसला लिया था।

शायद ये बात उस दिन की है, जब मंदिर में उनके पूछने पर अपना दिल खोलकर रख दिया था हमने। या शायद तब, जब उन्होंने हमको रोका था किसी बच्चे से उसका हीरो छीन लेने से। या हो सकता है ये फैसला तब लिया गया हो, जब हमने उनको पहली बार देखा था। ठंड की सुबह, गुनगुनी धूप और हरी साड़ी में वो। उनके माथे पर छोटी सी बिंदी थी और कपड़े का वजन न सँभाल पाने की शिकन। उनसे कैसे नजर हटाई थी, ये तो मत ही पूछो।

हम तो कभी-कभी ये भी सोचते हैं कि और तो सब भूल जाएँगे, पर उनकी उस छवि का क्या, जो दिल से उतर ही नहीं रही।

और भी कई किस्से हैं उनके, जो पूरा लिखकर उठें तो मलाल रह जाएगा कि दो-चार फिर भी रह गए। रहा सवाल उस फैसले का, तो शायद ये किसी एक 'पल' की बात नहीं। उनको सबकुछ मानने का फैसला हमने हर पल किया है। जब-जब वो साथ थीं, और तब भी, जब नहीं। हम निरंतर उनको चुन रहे हैं, तब से, जब हम मिले थे। अब तक, जब हमारा मिलना हमारे ख्वाबों में होता है।

अम्मा कसम कहीं से चिपकाया नहीं है। खुद का ही है। ये तो बस हमारी भावनाएँ हैं, जो फूट-फूट कर बाहर आ रही हैं। ऐसे।

शहर की भीड़ को चीरते हुए हम चले ही जा रहे थे। हाल ये था कि कहीं कोई रोक कर पूछ लेता कि, कहाँ? तो शायद हम कुछ भी न कह पाते।

जो दिल के हाथों मजबूर है, उसे क्या खबर वो कहाँ जा रहा है?

*** *** ***

अदालत में जो कुछ भी हुआ, ये कह सकते हैं कि अच्छा नहीं हुआ। हाँ, न्याय की बात करें तो सब ठीक था। पर थोड़ा पर्सनल जाएँ तो हमने खुद के पैर पर हथौड़ा मार लिया था। हाँ! कुल्हाड़ी कह लो, एक ही बात है।

"बिलकुल लेते हैं सर। चमन बाबू का तो खुलेआम चलता है," हमने कहा।

जज साहब का ध्यान अचानक ऐसे आकर्षित हुआ जैसे स्कूल में पी.टी. वाले मास्टर को किसी बच्चे की जेब में मोबाइल दिख गया हो।

"थोड़ा स्पष्ट तरीके से कहो," जज साहब बोले।

"हमारा पहला टेंडर था," हम इत्मीनान से बोले। "शहर से बियारी वाली सड़क का। लगा नहीं था कि कभी मिलेगा। पर लक्ष्मी जी की कृपा रही और चमन बाबू का आशीर्वाद, हमको हमारा पहला ही टेंडर अलॉट हो गया। नौ पर्सेंट की डील थी वो। और छोटे चमन को फिल्म में अलग एंट्री दिलवाई थी। चमन बाबू ने बोला था कि पहला टेंडर है ना, तो प्रोसेसिंग में ज्यादा लग रहे हैं। हाँ! फिर उसके बाद से सात पर्सेंट में चल रहा है।"

"क्या आपको पता था कि जो पैसे आपसे लिए जा रहे हैं, वो रिश्वत के ही हैं," वकील साहब ने सटीक हमसे पूछा।

एक होता है 'उत्साहित होना', और दूसरा होता है 'भावुक होना'। सही मात्रा में दोनों के मिश्रण से 'व्याकुल' बनता है। हम वकील साहब के चेहरे पर छाए उतावलेपन पर कोई टिप्पणी नहीं कर रहे हैं। कुछ आ गया कहने लायक, तो बस कह दिए।

"आ रहा है," हम वकील साहब को देखकर बोले, "इसका जवाब भी आ रहा है। थोड़ा धीरज रखिए, अब आए हैं तो सब बता कर जाएँगे।"

जज साहब जाने काहे हल्के से मुस्कुराने लगे।

"बोलो-बोलो! तुम आगे बोलो," उन्होंने हमसे कहा।

"चमन बाबू का सबकुछ तो फुल टू टेबल के नीचे से चलता है। ऊपर तो बस बातें होती हैं। काम-काज सब नीचे। आपके टेंडर में वजन नहीं है तो न सही, जेब में वजन होना चाहिए। बाकी चमन बाबू देख लेते हैं। पर इसमें गलती चमन बाबू की नहीं है, हमारी ही है। और हम जैसे औरों की, जो बार-बार अफसरों की बात मान कर, उनको और बढ़ावा देते रहते हैं। हम बिलकुल समझते हैं कि अगर हम नहीं करते तो कोई और करता। पर किसी और स्थिति में वो 'कोई और', हम ही तो हैं।"

*** *** ***

हो सकता है कि हमारे अंदर रह-रह कर आने वाले शायराना खयाल क्षणिक हों। इनकार तो हम कर ही नहीं रहे। हम मानते हैं कि हमारा दिमाग फिर गया होगा। एक अलग ही उतावलापन था हम में उस रोज।

बेसुध बिन खयाल का, किसी के अनसुने सवाल का, एक हिस्सा थे हम। सड़क की भीड़ में, कभी चिल्ला कर तो कभी हॉर्न बजा कर, जद्दोजहद में चलते हुए भी, हम एक फैसला ले रहे थे। अनजाने में ही सही, किसी के पल में ठहरे, कोई किस्सा थे हम। हमने नहीं देखा कि रास्ते में हम क्या-क्या छोड़ आए। बेलफ्ज बेनिशाँ किसी के खामोशी का, कुछ अनकहे जवाबों की मदहोशी का, एक हिस्सा थे हम। और देखते-ही-देखते, हमारी सवारी आकर रुकी पिंकी जी के स्कूल के ठीक सामने। लिख कर भी पूरा, कुछ अधूरा सा, एक किस्सा थे हम।

भगवान जाने ये किसी की आदत हो जाने का दुष्परिणाम था, या बचपन में सिर पर लगे किसी चोट का बहुत देर से होने वाला असर। हम तो बस इतना कहेंगे कि अगर उस वक्त पंडित महाराज हमारा नामकरण कर रहे होते तो हमारा नाम 'बबलू प्रेम शुक्ला' रख देते और उनको कोई पश्चाताप भी नहीं होता।

हमने फैसला ले लिया था।

उतावलापन कह लो या कुछ और, पर हमसे तो शाम का भी इंतजार नहीं हुआ।

'स्कूल खत्म होने तक तो रुकते?'

'क्या कहोगे जाकर उनके सामने, कि हमसे शादी कर लो। अरे जिसने हमसे तब ब्याह नहीं किया, तो अब क्यों करेंगी?'

'तब बात और थी। अनजान थे बिलकुल। अब तो वो फैन हैं हमारी।'

'जल्दबाजी में कहीं बात बिगड़ न जाए।'

'अगर अब नहीं, तो कब?'

'एक बार अम्मा से तो पूछ लेते। उसे बहू मानेगी जिसने हमको पहले ठुकराया हो? और गाँव वाले क्या कहेंगे?'

'क्या कहेंगे? यही ना कि एक दावत फिक्स हो गई।'

'अब इतना सोच लिया है तो कर गुजरो। जो होगा, देख लेंगे।'

एक खयाल खत्म नहीं होता, कि दूसरा पैदा हो जाता। सब एक से बढ़कर एक। मन को कोई इच्छाओं के चरम पर ले जाता तो कोई संभावनाओं की गर्दिश पर। पर अब जो हमने मन बना लिया था, किसी बात का कुछ भी फरक नहीं पड़ा। अलग-अलग खयाल आकर जाते रहे, पर दिल उनमें से सिर्फ एक पर अटका रहा... 'बोल दो'।

*** *** ***

कार्यवाही बिलकुल सही चल रही थी। जवाब भी हम सब सच-सच दिए जा रहे थे। यूँ कह लो कि जितना जानते थे, चमन बाबू का सब कच्चा-चिट्ठा खोलकर रख दिया था हमने। पर इस बीच, हमारा मन बार-बार पिंकी जी के खयालों को छू कर वापस आ रहा था।

इस केस में जो होना था वो तो लगभग तय हो गया था। बातें अब नए केस की उठने लगी थीं, हमारे खिलाफ। किसी ने स्पष्ट तो नहीं कहा, पर जिस हिसाब से जज साहब और वकील साहब के हाव-भाव बदले थे, ये कहना गलत होगा कि ऐसी कोई बात नहीं थी। अब तो सवाल ये था कि हम पर सिर्फ फाइन लगेगी या जेल यात्रा पर भी जाना होगा?

बस एक यही खयाल आया, और हम उठ बैठे।

अब पिंकी जी को बताना जरूरी हो गया था कि हमारी जिंदगी में क्या होने वाला था। सारी संभावनाएँ और सारा सच। और साथ-ही-साथ वो सब कुछ जो हमारा दिल चाहता था... वो ख्वाहिश, उनसे ब्याह करने की।

स्कूल का समय बस खत्म ही होने वाला था। मेन गेट पर गाड़ी लगाकर, हमने हाथ की घड़ी को देखा। लगभग आधे घंटे बाकी थे अभी। पर आज कोई सबर नहीं था जो हमको रोक लेता। भगे आए हम स्कूल के अंदर।

अंदर बैठे प्यून ने हमको रोकने की कोशिश जरूर की, पर उसकी कोशिश भी महज एक औपचारिकता ही थी।

स्टाफ-रूम ढूँढ़ने में कोई खास दिक्कत नहीं आई। पहला राइट और दूसरा लेफ्ट। हम दरवाजे के ठीक सामने जाकर रुके। यूँ तो बहुत ज्यादा भीड़-भाड़ नहीं थी वहाँ, पर जितने भी थे, पिंकी जी समेत, सारे शिक्षक गण हमको देख कर सकपका जरूर गए। माहौल यूँ बना मानो प्रिंसिपल साहब वहाँ साक्षात पहुँच गए हों। शिक्षकों का भी अलग ही गणित होता है। और अदाकारी तो ऐसी कि बच्चन साहब भी फेल। कभी देखना उनको, उनकी चलती क्लास में जब प्रिंसिपल आ जाए।

पिंकी जी पता नहीं किस हड़बड़ी में हमारे पास आ गईं। कुछ इशारा भी किया आँखों से। हल्का सा गुस्सा, हल्का सा आश्चर्य, और पीछे-पीछे चले आने का आदेश। इतना तो वो था जो उनकी आँखों में सब देख पा रहे थे। हमको तो वो भी नजर आया, जो हकीकत के परे ही था कुछ।

बिना कुछ बोले, वो आगे निकल आईं। और हम हो लिए पीछे-पीछे।

*** *** ***

पहला लेफ्ट और दूसरा राइट। बालकनी से होते हुए हम गेट के बाहर आ गए। काफिला वहाँ रुका, जहाँ से छोटे बच्चों के खेलने की जगह की शुरुआत होती है। झूले इतने थे कि मानो पूरा-का-पूरा मीना-बाजार लगा हुआ हो। आस-पास निर्धारित तौर पर विकसित किया हुआ गार्डन, सिर पर अलग-अलग तरह के पेड़ों की छाँव और दीवारों पर जानवरों की मोहक तस्वीरें। कहाँ हम बचपन में हैंड-पंप के हैंडल पर ही झूल लिया करते थे।

हम पीछे-पीछे आ तो गए थे, पर ये नहीं पता था कि अब आगे क्या कहना है। मुमकिन है कि मैडम नाराज हों। यूँ स्टाफ-रूम में हमारा बेधड़क चले जाना, शायद नियम-संगत न हो। और उन्होंने दरवाजे पर जिन नजरों से इशारा किया था, हमको डर था कि कहीं हमारी ही क्लास न लग जाए। क्योंकि मैडम का सब्जेक्ट अंग्रेजी था, दृश्य के भयावह होने की संभावनाएँ काफी हद

तक बढ़ गई थीं।

पर ये क्या?

"शुक्ला जी...!" बच्चों सी उछलते हुए पिंकी जी हमारे गले लग गईं।

हम ये तो नहीं जानते कि उस समय हमको क्या करना चाहिए था। बस इतना समझते हैं कि जो हमने किया, वो नाकाफी था। हम बेखयाली में बस खड़े रह गए। उस समय एहसास हुआ कि हमसे अच्छा रिएक्शन तो एक्सपायर हो गई दवाएँ देती हैं। जहाँ तक बात है माहौल को समझने की, कि साला चल क्या रहा है? मानो सच में हमारी क्लास चल रही थी, वो भी गणित की।

'अभी तो हमने अपने मन की बात बताई ही नहीं थी। फिर इतनी खुशी किस बात की?' हमारे मन में आया जरूर, पर हम चुप थे। 'भगवान हमारी सुन रहे हैं या पिंकी जी ने हमारा चेहरा पढ़ लिया?'

"शुक्ला जी," उन्होंने बहुत ही खुशी में कहा, "पिछले दो घंटे से हम तुमसे मिलने को छटपटा रहे हैं। यकीन मानो, हमने आज आखरी क्लास भी छोड़ दी। और ऐसे में तुम अचानक, स्टाफ रूम के बाहर, एक पल को तो लगा जैसे हमारा सीधा कनेक्शन भगवान से हो गया है।"

"पर हुआ क्या?" हमने पूछा।

"वो जर्नलिस्म के इंटर्नशिप के लिए अप्लाई किया था ना हमने," हमको कुछ खास याद तो नहीं आया पर हमने 'हाँ' में सिर हिलाया, "आज फोन आया था। हमारा सिलेक्शन हो गया है। हम दिल्ली जा रहे हैं, अगले हफ्ते।"

13. प्रायिकता

वो सुकून किसी भीड़ की हलचल में नहीं, जो अकेलेपन की खामोशी में है। और उस पर भी अगर सर्दी की दोपहर में नदी का किनारा हो, तो क्या कहने!
पिंकी जी जा चुकी थीं। अब तो तीन हफ्ते होने को आ गए थे।

दिन भले ही गिनती के बीते थे, पर लग रहा था कि जाने किस जनम की बात होगी वो। डबलू और बबलू को तो याद भी नहीं कि उनके बीच कोई लड़ाई हुई थी। काम-काज थोड़ा मंदा जरूर पड़ने लगा था, पर धीरे-धीरे माहौल वापस पहले की तरह हो गया था।

अम्मा की मस्ती कम नहीं हुई। बातों में वही कड़कपन और सोच उतनी ही उम्दा। पिंकी जी के जाने के बाद थोड़ा दुखी रहने लगी थी, पर कोई खास समस्या नहीं आई। हमारी पिंकी जी से बढ़ती नजदीकियाँ उसके सास बनने के सपने को एक उम्मीद सी देने लगी थीं। अचानक सबका बिखर जाना, इस उम्र में थोड़ा तो विचलित करेगा। उसे लगता है कि ब्याह की हमारी आखरी उम्मीद हो गई है खत्म। खबर तो ये भी है कि अम्मा बाजार में आजकल हमारे नाप का भगवा कुर्ता ढूँढ़ रही है।

अदालत में फैसला श्री चमन पटेल के खिलाफ आया। उनकी जेल यात्रा तो शुरू भी हो गई है। बेचारे अब भी मुस्कुराते रहते हैं। सिर पर आज भी वही चमक और चेहरे पर उतनी ही मासूमियत। सच कहें तो अब और ज्यादा मुस्कुराने लगे हैं। कभी-कभी तो लगता है कि पागल न हो जाएँ। पर बड़े नेक और साफ-दिल इंसान हैं।

श्री चमन पटेल का केस तो हो गया है खत्म। अब इंतजार हमारे खिलाफ आगे की कार्यवाही का है। वैसे अब तक तो कुछ भी नहीं हुआ, पर उम्मीद है कि जल्दी ही प्रेम पत्र आएगा। देश की न्यायपालिका में देर है, पर अंधेर नहीं।

हम नदी किनारे बैठे पानी में पत्थर उछाल रहे थे कि पीछे से डबलू ने आवाज दी, "जान देने का सोच रहे हो का?"

हम पीछे मुड़े। डबलू के साथ प्रकाश भी था। गाड़ी साइड में लगा कर दोनों हमारे पास आ गए।

"हमारी कौन सी लुगाई भाग गई बे कि हम जान दे दें," हमने कहा।

दस सेकंड तक तो किसी ने कुछ नहीं कहा, पर उसके बाद दोनों ने जो हँसना शुरू किया, क्या 'शोले' का 'गब्बर' और क्या 'रामायण' के राक्षस-गण? सब फेल।

"अब मजाक तो मत उड़ाओ यार!" हम बोले, "अब जाना था, तो चली गई।"

इतनी देर में वो दोनों हमारे बगल में आकर डट गए।

"जाना था तो चली गई," डबलू बोला, वो अभी भी हँस रहा था। "हमको तरस तो तुम्हारी इच्छाओं पर आ रहा है। सपने देखना सेहत के लिए अच्छा है, होता-होगा, पर ऐसे? कि मतलब एक बार ब्याह के लिए मना करने के बाद भी मान जाएगी? कहीं के शाहरुख खान हो? कि कोई मंतर फूँक दिया था? अरे दिमाग भी तो कोई चीज होती है? बस चल दिए डुगडुगी में पीछे बैठा कर। हम तो कब से कह रहे थे कि दिक्कत है इस कन्या में। मत बर्बाद करो इतना समय इस पर। अब लो! मारते रहो पत्थर पानी में। कसम से सब फिल्म देख-देख कर सठिया गए हैं।"

"हाँ! और भइया थे भी क्या पिंकी जी के सामने," प्रकाश बोला। "बबलू शुक्ला... ठेकेदार। और ज्यादा-से-ज्यादा क्या? एक नए जगह का गाइड। इतने से में थोड़ी होता है।"

इस वक्त तो लग रहा था कि दोनों कहीं के नामी-गिरामी प्रेम विशेषज्ञ हैं। अक्सर ऐसे हालातों में दोस्तों का ये रूप प्रचंड तरीके से सामने आता है। फिर लगता है कि यही तो हैं जिन्होंने लैला-मजनू, हीर-राँझा, सबकी कहानियों को साकार किया था। खुद की जीवनी भले ही कुछ खास कहने-सुनने लायक न हो, पर ज्ञान देंगे लंबी-लंबी। लपेटते रहो बस।

हम भी चुप-चाप लपेट रहे थे। अब कहने को बचा भी कुछ कहाँ था?

"वैसे भइया ने कोशिश में कोई कमी नहीं रहने दी, क्यों?" प्रकाश बोला, "काला कुर्ता, कंपनी वाला चश्मा, सोने की घड़ी, आड़ी-तिरछी अंग्रेजी, बुलेट में पीछे बिठा कर घुमाना और नर्मदा घाट, मंदिर की घंटी और बस-स्टैंड की चाट, सब एक कर दिया कसम से। देखो, अभी भी टशन उतारे नहीं उतर रहा है।"

"शकल भी तो कोई चीज होती है," डबलू बोला और ठहाके मारकर हँसने लगा।

"और अकल! वो भी तो..." प्रकाश ने बात आगे बढ़ाई।

भगवान जाने क्या मजा आ रहा था दोनों को, हमारे सामने हमारी ही उड़ाने में। हम तो ये मान कर चुप थे, कि आज हमारा दिन नहीं है। एक जमाने में हम भी उनकी जगह हुआ करते थे। पर आज नहीं।

"चलो अब," डबलू बोला। "हमको भी साइट पर जाना है। प्रकाश को गोडाउन छोड़ते हुए निकलेंगे। तुम भी चल लो, काम बहुत बाकी है।"

उसने हमको साथ चलने का इशारा किया।

"हाँ काम तो है, और चलना भी है," हम बोले, "पर थोड़ी देर से आते हैं। तुम चलो।"

दोनों का चेहरा तो यूँ बना कि पाँचवीं के बच्चे से छठवीं का सवाल पूछ लिया गया हो।

गणित का।

और उसने सही-सही जवाब दे दिया हो।

"समय बदल गया है," प्रकाश बोला, "हम तो बोलते थे कि ज्यादा फिल्म-विल्म न दिखाया करो इनको। भइया भी अब आशिकों सी देने लगे हैं। थोड़ी देर से आते हैं! अब नदी किनारे क्या अचार डालेंगे? कहीं सच्चे प्यार-व्यार में तो नहीं पड़ गए?"

"शुभ-शुभ बोलो बे तुम," डबलू तपाक से बोला। अब 'बोला' क्या? मुँह से अपशब्द निकालने के लिए, डाँट ही रहा था समझ लो। "प्यार भी कोई पड़ने की चीज है?" वो आगे बोला। उत्तेजना इस बार पहले से भी ज्यादा थी, "सब आँखों का छलावा है। अपना भाई बस थोड़ा भटक गया है। पर ज्यादा दूर नहीं जा पाएगा। आ जाएगा... धीरे-धीरे।"

"अरे वही तो कह रहे हैं!" हम लगभग चीखते हुए, आखिरकार बोले। हमारी आवाज में जो मजबूरी थी, उसका मुकाबला प्रेमचंद की कहानियों के नायक भी नहीं कर सकते। और इस मजबूरी से साथ बाहर आ रहा था हमारा गुस्सा। "आ जाएँगे बाद में, धीरे-धीरे। तुम निकलो ना। काहे जान दिए जा रहे हो। कोई भारत रत्न थोड़ी मिलेगा हमारे साथ बैठ कर, कि गड़ गए बस।"

बातें हम जैसी भी कर रहे थे, आवाज में झुंझलाहट देखने लायक थी। मतलब सुनने लायक। समझ में उनके भी आ गया था कि अब भी अगर रुके रहे, तो अगला पत्थर हम नदी में नहीं फेंकेंगे।

दोनों जाने तो लगे, पर अब उनकी हँसी पहले से भी तेज हो गई थी। सर्कस के जोकर सा महसूस करने लगे थे हम। पर भगवान का शुक्र है, कम-से-कम वो दोनों गए तो।

कभी भगवान से दोस्त माँगना हो, तो चढ़ावा थोड़ा अच्छा ले कर जाना। ग्यारह रुपए में क्या मिलता है, उसका उदाहरण डबलू और प्रकाश हैं। साक्षात। कभी-कभी लगता है कि बचपन ही सही था, जब 'दो रुपए की पेंसिल, हमारी दोस्ती कैंसिल' बोल दिया करते थे और सब खत्म। कसम से, धरती का सीना चीरकर निकलते हैं ऐसे दोस्त।

उनके जाने के बाद हम आँखें बंद कर उसी नदी के किनारे लेट गए। प्रकाश की बातें कितनी सच थीं, और कितनी नहीं, भगवान जाने, पर हम अपने ऊपर से ठंडी हवा को गुजरते, महसूस कर रहे थे। बहते पानी की मायूसी भी सुन पा रहे थे, और रोक लिया था हमारे मन ने हमको, बीते किसी लम्हे में। वो लम्हा जो हमने बहुत पहले कभी जिया था।

वो कभी थे ही कहाँ जिनका न होना खल रहा है, बदस्तूर बस पहले सा ही जीना-मरना चल रहा है।

"पीप... पीप... पीप..." पीछे से कान झनझना देने वाली हॉर्न की आवाज आई। हमने पलट कर देखा। डबलू और प्रकाश गाड़ी घुमाकर वापस आ गए थे।

"गई वो!" डबलू दूर से ही चिल्ला रहा था। "अकेले ही मरोगे अब।"

दोनों हँसते हुए दूर से ही वापस चले गए।

ग्यारह रुपए में दो! और क्या मिलेगा इतने में? इसमें ऊपर वाले का भी क्या दोष? हमको भी इक्यावन तो रखने ही चाहिए थे, कम-से-कम।

*** *** ***

रात के हो रहे थे 12:30। जनवरी का महीना था और कड़ाके की ठंड। इस मौसम में दो दुनिया होती हैं। एक बिस्तर-रजाई के अंदर और दूसरी उसके बाहर। दोनों के अपने मजे, और दोनों एक-दूसरे से पूरी तरह से अलग। हम अंदर वाले में अभी-अभी ही आए थे। कमरे में अंधेरा पसरा था, और हम थे सोने की तैयारी में।

अचानक फोन की बत्ती जली और लगा बजने। हमको हमारे जीवन के इसी पल में समझ आया था कि फोन में डरावने रिंग-टोन क्यों नहीं रखने चाहिए।

नंबर पहचान का नहीं था। '0089 आखरी में किसका हो सकता हैं?' हमने सोचा जरूर, पर ज्योतिष नहीं हैं ना, इसलिए पता नहीं चला।

"हैलो..." हम दबी आवाज में बोले।

दबी आवाज क्यों? नहीं बताएँगे? कुछ तो खुद समझो यार!

"क्या शुक्ला जी," उधर से एक उत्साहित आवाज आई, "इतनी जल्दी भूल गए। न कोई फोन, न मैसेज... नॉट फेयर।"

"पिंकी जी?" हमने रुक-रुक कर, झिझकते हुए पूछा।

"नहीं! तुम्हारी अम्मा!" उधर से जवाब आया।

आवाज सुन कर, पहले तो हमको 99.99 प्रतिशत पता था कि वो ही होंगी। इसलिए सवाल किया था। पर जवाब सुनने के बाद, अब ये सौ प्रतिशत तय था, कि कोई तूफान ही है फोन के उस पार।

और तूफान भी वो, जो हमको बहुत दूर उड़ा कर ले गया था कभी। और छोड़ गया वहीं-कहीं, बस ऐसे ही।

"आ गई याद आखिर। और ये नया नंबर क्यों? कैसा लग रहा है नया शहर? और काम, चौंचक चल रहा है कि नहीं?" हमने सब पूछ लिया, एक साँस में। हमारी आवाज में हल्का सा उत्साह और हल्की सी झिझक, दोनों थे।

"चल रहा है! अरे यहाँ तो सब कुछ दौड़ रहा है," मैडम बोलीं, "यहाँ तो पता ही नहीं चलता कि कब सुबह की शाम हो जाती हैं, और कब अगला दिन? और लोग भी बहुत अजीब हैं यार। सब अपने काम से मतलब रखते हैं। फुर्सत ही नहीं है किसी को। हमको तो यहाँ अपने रूम-मेट से बात करे चार-चार दिन निकल जाते हैं। अभी दो-तीन हफ्ते भी नहीं हुए आए और नींद कब पूरी ली थी, वो भी याद नहीं है। आना-जाना यहाँ का सबसे बड़ा मुद्दा है हमारे लिए। इस शहर में ट्रैफिक की तो पूछो मत..."

हमने नहीं पूछा।

कुछ भी।

बस चुप-चाप सुनते रहे।

उनका 'कहना' चलता रहा, हमारा 'सुनना' भी न रुका। घर से लेकर दफ्तर तक, पड़ोसी से लेकर साथ काम करने वालों तक, उगते सूरज से लेकर ढलती शाम तक, सब बताया उन्होंने। ऐसा लग रहा था कि वो आज फोन पर ही अपने पूरे तीन हफ्ते जीना चाहती थीं, दोबारा, हमारे साथ। एक मन को तो लगा कि रोक लूँ उनको आगे कुछ भी कहने से; अब कोई फरक नहीं पड़ता ना, इसलिए। पर फिर उस वादे का क्या, जो हमने खुद से किया था, कि उनकी हर जिद मानेंगे। उनका हमारे साथ बीतने वाला एक-एक पल भी उनकी जिद का एक हिस्सा ही तो था।

"आप खुश हैं, बस काफी है," बहुत देर बाद जब उनकी बातें खत्म होने सी हुई, तब हमने कहा।

"खुश," अब उनकी आवाज में थोड़ी झिझक सी आ गई थी, "हाँ, कह सकते हैं। पर यहाँ कुछ भी वैसा नहीं है जैसा सोच कर आए थे। सब नया है, बिलकुल अलग।"

"पर आपको जो चाहिए था, वो सब तो है ना अब आपके पास," हमने यूँ कहा जैसे हम खुद को ही मना लेना चाहते हों।

"तुम नहीं हो ना!" उस पार से जवाब आया।

कहानी के पार... कहानी से परे

मैं जानता हूँ ये एक मँझधार सा है। बबलू शुक्ला के लिए, पिंकी शर्मा के लिए और शायद आपके लिए भी। ये कहानी अधूरी लग जरूर रही है, पर यकीन मानिए ये तब ही पूरी हो गई थी जब सर्दी की सुबह, गुनगुनी सी धूप में, दोनों पहली बार मिले थे। या शायद उस नर्मदा घाट में, जहाँ दोनों अपना एक-एक हिस्सा, एक-दूसरे के लिए छोड़ आए थे। या शायद तब, जब पिंकी ने बबलू को, एक पिता पर हाथ उठाने से रोका था।

कुछ कहानियाँ कभी खत्म नहीं होतीं। किसी एक की अक्सर एक आदत छूट जाती है, और दूसरा, दूसरे को बुरी आदत बना बैठता है। दोनों दूर, अलग, शायद खुश, पर वो कहानी चलती रहती है।

जो कभी खत्म ही नहीं हुआ, उसे आप 'पूरे' और 'अधूरे' में नहीं बाँट सकते।

अजय राज सिंह

लेखक के बारे में

अजय राज सिंह

पेशे से एक Chartered Accountant होने के साथ, अजय खुद को writer भी कहना पसंद करते हैं। इन्होंने लिखने की शुरुआत school के दिनों से ही कर दी थी। ‘वो भी अंग्रेज़ी में’। बाद में इन्होंने तय किया कि इनके लेखन का ‘दिल’ hindi में बसता है। वैसे तो ये बचपन से ही काफी कुछ लिखते आ रहे हैं, पर ‘साहित्य’ के लिए यही अच्छा रहेगा कि इनके शुरुआती दिनों के काम दुनिया से महरूम ही रहें। कहानियों और शायरियों के अलावा इनको गीत लिखने का भी शौक है। 'लग जा गले' के जवाब में इनका लिखा गीत 'एक ही सफर' रिलीज़ हो चुका है। फेसबुक पर 'Ex Writer' के नाम से लिखते हैं, और यह इनकी पहली किताब है।

कैसा लगा हमारा पल भर का साथ? लिखकर भेजिए caajayrajsingh@gmail.com पर।

जय हो!